सहजानंद शास्त्रमाला

धर्मबोध (उतरार्द्ध)

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी “सहजानन्द” महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

१४९२
http://sahjanandvarnishastra.org/
श्री ... जैन वाचनालय ... उज्जैन

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

सहजानंद सत्संग सत्प्रकाशन

(३)

धर्मबोध (उत्तरार्द्ध)

लेखक—

शान्तमूर्ति न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक वर्णी
मनोहर जी "सहजानंद" महाराज

प्रकाशक—

अध्यक्ष-सहजानंद सत्संग सेवा समिति

वि० स० २००८] वीरनिर्वाण सम्वत् २४७८ [ई० १९५१

प्रति ११००] [मूल्य ||=)

५० या ५० से अधिक प्रति मंगाने पर दो आना
प्रति रु० कमीशन

मुद्रकः—जयप्रकाश रस्तौगी विजय प्रिन्टिंग प्रेस मेरठ शहर।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इस ग्रन्थ में श्रावकों के कर्तव्य अनेकान्त स्याद्वाद, अहिंसा, भगवत्पूजाविधि, आत्मस्वरूप तत्त्वस्वरूप आदि विषयों पर बहुत ही उत्तम वर्णन है।

इस उपकार का महान् आभार मानता हुआ मैं अन्त में पाठकवृन्द से यही आशा करता हूँ कि इस पुस्तक का अध्ययन, मनन करते हुए धर्म के गम्भीर सिद्धान्तों में प्रवेश करने का उपाय पा कर स्वपर कल्याण करें।

उन्निनीषु—
रतनलाल जैन B. Com.
(मंत्री, उत्तर प्रान्तीय धर्मशिक्षा-परीक्षालय) सदर मेरठ।

मार्गशीर्ष शुक्ला ६
वीर नि० सं० २४५८

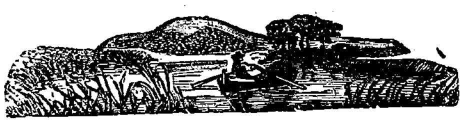

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यत्किञ्चित्

आत्मा का उद्धार अहिंसा के बिना नहीं हो सकता और अहिंसा आत्मा के स्वभाव के विरुद्ध न चलने को कहते हैं उस अहिंसामय स्थिति को पाने के लिये तत्त्वज्ञान साधक ही नहीं अपितु साधकतम है इस ही तत्त्वज्ञान को प्रारम्भिक विषय का सिंहावलोकन कराने वाले इस धर्मबोध (उत्तरार्द्ध) के प्रकाश में आने के अवसर पर अल्प यत्किञ्चित लिखने का आयास कर रहा हूँ।

प्रिय पाठक वृन्द! मुझे धर्मशिक्षा सदन सदर मेरठ में धार्मिक विषय के पठन पाठन का शुभावसर प्राप्त हुआ उस समय (चातुर्मास) कभी कभी पूज्य श्री वर्णी जी स्वयं आत्म-विद्यार्थियों को अपनी शैली से समझाते थे। मेरी इच्छा थी कि पूज्य श्री वर्णी जी धर्म के मुख्य विषयों पर अपनी रचना देवें, उनसे प्रार्थना भी की, और हर्ष की बात है कि आपने अपना अमूल्य समय देकर धर्मबोध की रचना करते हुए केवल आत्मविद्यार्थियों का ही नहीं प्रत्युत स्वाध्याय प्रेमी एवं धर्म के जिज्ञासु पुरुषों का महान् उपकार किया है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

धर्मबोध (उत्तरार्द्ध)

पाठ १

श्रावक व श्रावक के मूलगुण

सच्ची श्रद्धा वाले विवेकी योग्य क्रियावान् गृहस्थ को श्रावक कहते हैं।

श्रावक ३ प्रकार के होते हैं—१ पाक्षिक, २ नैष्ठिक, ३ साधक।

पाक्षिक—प्रतिमा (नियम) का धारण किये बिना जिनकी प्रवृत्ति योग्य हो उन्हें पाक्षिक श्रावक कहते हैं।

नैष्ठिक—प्रतिमाधारी श्रावक को नैष्ठिक श्रावक कहते हैं।

साधक—सन्यासमरण की सत्क्रियाओं में सावधान श्रावक को साधक श्रावक कहते हैं।

श्रावक के मूल गुण

मूल गुण—मुख्य गुणों को कहते हैं। जिन गुणों के बिना श्रावक नहीं कहला सकता वे श्रावक के मूल गुण हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

श्रावक के मूल गुण ८ हैं—१ मधुत्याग, २ मांसत्याग, ३ मद्यत्याग, ४ उदम्बरत्याग, ५ देवदर्शन, ६ जीवदया, ७ जलगालन, ८ रात्रिभोजनत्याग।

१—मधुत्याग—मधु शहद को कहते हैं शहद खाने का त्याग करना मधुत्याग है, शहद मक्खियों का वमन और मल है, इसमें अनंत जीव पैदा होते रहते हैं, और इसके निचोड़ने में छोटी मक्खियां भी मर जाती हैं, शहद के खाने से हिंसा का व आसक्ति का पाप लगता है, अतः मधु का सेवन नहीं करना चाहिये।

२—मांसत्याग — द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्यों के घात से मांस होता है, मांस के सेवन का त्याग करना मांसत्याग कहलाता है। मांस में चाहे वह मरे हुये प्राणी का हो, चाहे मार कर किया हो, चाहे पक्का हो या कच्चा हो या पकता हुआ हो हर हालत में उस ही वर्ण के असंख्यात त्रस जीव व अनंत निगोद जीव पैदा होते रहते हैं अतः मांस के भक्षण से अनंत जीवों की हिंसाका पाप लगता है, मांस के खाने वाले निर्दय व क्रूर स्वभाववाले हो जाते हैं, अतः मांस का भक्षण नहीं करना चाहिये।

३—मद्यत्याग—मद्य शराब को कहते हैं, शराब के

सेवन का त्याग करना मद्यत्याग है। शराब अनेक पदार्थों को सड़ाकर बनाई जाती है, इसमें अनंत जीव पैदा होते रहते हैं इसके सेवन से अनंत जीवों की हिंसा होती है इसके सिवाय मद्यपान से मनुष्य पागल हो जाता है, धर्म कर्म का विवेक नहीं रहता, उसका सब जगह अपमान होता रहता, और तो क्या उसके मुँह में कुत्ते तक भी मूत जाते हैं, अतः मद्य का त्याग ही करना चाहिये।

४—उदम्बरत्याग—बड, पीपल, ऊंबर, कठूंबर पाकर आदि फलों का जिनमें कि त्रसजीव रहते हैं त्याग करना उदम्बरत्याग कहलाता है।

५—देवदर्शन — अपने भावों को निर्मल रखने के लिये प्रति दिन भगवान् का दर्शन, वंदन, स्मरण, भक्ति करना देवदर्शन है, देवदर्शन से इस लोक तथा परलोक में सुख प्राप्त होता है और परम्परया शाश्वत मोक्ष सुख प्राप्त होता है।

६—जीवदया—किसी भी जीव के घात का संकल्प भी नहीं करना, और अपनी शक्ति न छुपा कर दुःखी प्राणियों की सेवा करना जीवदया है।

७—जलगालन—जल को दुहरे छन्ने से छान कर खाने पीने के व्यवहार में लाना जलगालन है। अनछने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जल में अनेक सूक्ष्म त्रस जीव रहते हैं, दुर्बीन से देखने पर एक डाक्टर ने जल के एक बूंद में ३६४५० कीटाणु बताये थे।

८—रात्रिभोजनत्याग—रात्रि में भोजन का त्याग करना रात्रिभोजनत्याग है। रात्रि में बहुत से त्रस जीवों का सञ्चार होता है, अनेकों जगह तो सांप बिच्छू छपकली आदि जानवर भी गिर जाते हैं। कितने ही स्थान पर बरात की बरात, परिवार के सब लोग रात्रि के भोजन से मृत्यु को प्राप्त होगये, अतः रात्रिभोजन का त्याग ही करना चाहिये।

किन्हीं आचार्यों ने इस प्रकार भी ८ मूलगुण कहे हैं १-मधुत्याग, २-मांसत्याग, ३-मद्यत्याग, ४-अहिंसाणुव्रत, ५-सत्याणुव्रत, ६-अचौर्याणुव्रत, ७—ब्रह्मचर्याणुव्रत, ८ परिग्रहपरिमाणाणुव्रत।

नोट—(इन ८ मूलगुणों में से जो ५ अणुव्रत हैं उनका नियम न होकर भी अणुव्रतों की साधारणतया प्रवृत्ति पाक्षिक श्रावक की रहती है)।

जो लोग उक्त दोनों प्रकार के मूलगुणों का पालन नहीं कर सकते ऐसे संस्कार रहित शूद्र आदि निम्न प्रकार भी ८ मूलगुण धारण कर सकते हैं—

http://www.jainkosh.org

१-मधुत्याग, २-मांसत्याग, ३-मद्यत्याग, ४-८ पञ्च उदम्बर फलों का त्याग।

प्रश्नावली

१—पाक्षिक और नैष्ठिक श्रावक में क्या अंतर है?

२—श्रावक किसे कहते हैं? और श्रावक के मूलगुण कितने होते हैं नाम सहित लिखो।

३—मद्यत्याग, रात्रिभोजनत्याग, जलगालन, इनका लक्षण लिखकर यह बतावो कि देव दर्शन से क्या लाभ है?

४—मांस पक जाने पर भी क्या दोष है? और वह कैसे?

५—श्रावक कितने प्रकार के होते हैं? नाम सहित लिखो।

६—साधक श्रावक कब होता है?

७—तुम्हारे श्रावक के ये मूलगुण हैं या नहीं? हैं तो किस लिये आपने मूलगुण धारण किये? और नहीं हैं तो इनके पालन करने का लाभ तुम्हारे चित्त में जच गया या नहीं और वह किस प्रकार।

८—किन किन जाति के जीवों के घात से मांस पैदा होता है?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पाठ २

नैष्ठिक श्रावक की ११ प्रतिमा

अविरत सम्यग्दृष्टि जब चारित्र के सन्मुख होता है और जब तक उसके एक देश चारित्र रहता है तब उसे नैष्ठिक श्रावक कहते हैं, इसके ११ दर्जे होते हैं जिन्हें ११ प्रतिमा कहते हैं। किसी प्रतिमा के धारण करने वाले को पहिली प्रतिमाओं का धारण करना आवश्यक है।

११ प्रतिमाओं के नाम—१दर्शन प्रतिमा, २ व्रत प्रतिमा, ३ सामायिक प्रतिमा, ४ प्रोषध प्रतिमा, ५ सचित्तत्याग प्रतिमा, ६ रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमा, ७ ब्रह्मचर्य प्रतिमा, ८ आरंभत्याग प्रतिमा, ९ परिग्रहत्याग प्रतिमा, १० अनुमतित्याग प्रतिमा, ११ उद्दिष्टत्याग प्रतिमा।

१–दर्शन प्रतिमा—अतिचाररहित सम्यग्दर्शन का धारण करना व सप्त व्यसनों का अतिचारसहित त्याग करना, और सर्व अभक्ष्यों का त्याग करना दर्शन प्रतिमा है।

२–व्रतप्रतिमा—अतिचाररहित ५ अणुव्रतों का,

तथा ३ गुणव्रत व ४ शिक्षाव्रतों का पालन करना व्रत-प्रतिमा है।

अणुव्रत ५ इस प्रकार हैं—

१–अहिंसाणुव्रत, २–सत्याणुव्रत, ३–अचौर्याणुव्रत, ४–ब्रह्मचर्याणुव्रत, परिग्रहपरिमाणाणुव्रत।

(१) अहिंसाणुव्रत—त्रसजीव की हिंसा का त्याग करना व व्यर्थ स्थावर जीव का घात नहीं करना अहिंसाणुव्रत है।

(२) सत्याणुव्रत–दूसरों का वध व अहित करनेवाले, कठोर, निन्द्य, वचन नहीं बोलना सत्याणुव्रत है।

(३) अचौर्याणुव्रत—बिना दिये हुए किसी की वस्तु को ग्रहण नहीं करना अचौर्याणुव्रत है।

(४) ब्रह्मचर्याणुव्रत–अपनी स्त्री के सिवाय अन्य सर्व स्त्री जाति का कामविषयक संकल्प भी नहीं करना ब्रह्मचर्याणुव्रत है।

(५) परिग्रहपरिमाणाणुव्रत-खेत, मकान, अनाज, रकम सोना, चाँदी, पशु, नौकर, वस्त्र, बर्तन, इन दस प्रकार के परिग्रह का आवश्यकतानुसार परिमाण करके उससे अधिक की इच्छा न करना परिग्रहपरिमाणाणुव्रत है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

गुणव्रत ३ होते हैं–१ दिग्व्रत, २ देशव्रत, ३ अनर्थदण्डव्रत।

(१) दिग्व्रत—लोभ आरम्भ के त्याग के अभिप्राय से ऊपर, नीचे, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर दिशाओं में देश नदी आदि का संकेत करके या मील कोश आदि का परिमाण करके जाने आने सम्बन्ध रखने का नियम कर लेना फिर उससे बाहर सम्बन्ध न रखना सो दिग्व्रत है।

(२) देशव्रत–दिन मास पहर घण्टा आदि नियतकाल तक दिग्व्रत में की हुई मर्यादा के अन्दर और भी क्षेत्र कम करके उससे बाहर सम्बन्ध नहीं रखना सो देशव्रत है।

(३) अनर्थदण्डव्रत—बिना प्रयोजन, जिन कामों में पाप का आरंभ हो उन्हें अनर्थदण्ड कहते हैं और अनर्थदण्ड का त्याग करना अनर्थदण्डव्रत है।

अनर्थदण्ड ५ होते हैं—१ पापोपदेश, २ हिंसादान, ३ अपध्यान, ४ दुःश्रुति, ५ प्रमादचर्या।

पापोपदेश—जिसमें दूसरे जीवों को क्लेश हो ऐसे व्यापारादि का उपदेश देना पापोपदेश नामक अनर्थदण्ड है, इसका त्याग करना सो पापोपदेशविरति अनर्थदण्ड व्रत है।

http://www.jainkosh.org

हिंसादान—तलवार, बर्छी, बन्दूक आदि अविश्वास्य पुरुष को देना हिंसादान अनर्थदण्ड है, इसका त्याग करना सो हिंसादानविरति अनर्थदण्डव्रत है।

अपध्यान—राग या द्वेष वश किसी के धन, स्त्री, इज्जत आदि के विनाश या बिगाड़ का चिन्तवन करना अपध्यान अनर्थदण्ड है, इसका त्याग करना अपध्यानविरति अनर्थदण्डव्रत है।

दुःश्रुति—राग द्वेष बढ़ाने वाली कथा आदि सुनना दुःश्रुति अनर्थदण्ड है, इसका त्याग करना सो दुःश्रुतिविरति अनर्थदण्डव्रत है।

प्रमादचर्या—हिंसक जानवरों को पालना, सिनेमा आदि कषायवर्द्धक तमाशे देखना, व्यर्थ जल बखेरना वृक्ष पत्तों का काटना तोड़ना आदि प्रमादचर्या है, इसका त्याग करना प्रमादचर्याविरति अनर्थदण्डव्रत है।

शिक्षाव्रत ४ हैं—१ सामायिक, २ प्रोषधोपवास, ३ भोगोपभोगपरिमाण, ४ अतिथिसंविभाग।

सामायिक–प्रातःकाल व सांयकाल को विधिपूर्वक सामायिक करना व मध्याह्नकाल में भी करना सो सामायिक शिक्षाव्रत है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सामायिक करने की विधि यह है—पहिले पूर्व या उत्तर दिशा की ओर खड़े होकर ९ बार णमोकार मंत्र पढ़कर पंच परमेष्ठी को पंचाङ्ग नमस्कार करे तथा उसी समय यह भी विचारे कि ऊर्ध्वलोक तथा अधोलोक में जितने चैत्य व चैत्यालय हों उन्हें भी नमस्कार हो, तथा यह संकल्प करे कि इतने समय तक मेरे आरम्भ परिग्रह का विकल्प भी न हो। फिर पूर्व दिशा की ओर खड़े होकर ९ बार णमोकार मंत्र पढ़ कर तीन आवर्त करता हुआ " पूर्व दिशा में जो परमेष्ठी विराजमान व चैत्य चैत्यालय हों उन्हें मन, वचन, काय से नमस्कार हो " ऐसी भावना करता हुआ शिरोनति करे। फिर इसी प्रकार दक्षिण, पश्चिम, उत्तर दिशा की ओर खड़े होकर आवर्त, भावना व शिरोनति करे। पश्चात् उत्तर या पूर्व दिशा की ओर खड़े होकर या बैठ कर १०८ बार मंत्र का जाप करे, पंच परमेष्ठी के स्वरूप का व बारह भावना का विचार करे तथा सर्व ओर से विकल्प हटा कर आत्मस्वरूप में स्थिर होने का प्रयत्न करे। अन्त में खड़े होकर ९ बार णमोकार मंत्र पढ़ कर कायोत्सर्ग करे और नमस्कार करे।

प्रोषधोपवास—प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को प्रोषधपूर्वक उपवास करने को प्रोषधोपवास कहते हैं।

प्रोषधोपवास उत्तम मध्यम जघन्य के भेद से ३ प्रकार का है।

उत्तमप्रोषधोपवास में सप्तमी व त्रयोदशी को एकाशन करके अष्टमी व चतुर्दशी को उपवास करे और नवमी व पन्द्रस को एकाशन करे।

मध्यमप्रोषधोपवास में २ विधि हैं १—सप्तमी व त्रयोदशी को एकाशन करे, अष्टमी व चतुर्दशी को केवल १ बार जल लेवे और नवमी व पन्द्रस को एकाशन करे। २—सप्तमी व त्रयोदशी के सायंकाल से नवमी व पन्द्रस के प्रातःकाल तक निर्जल उपवास करना, परन्तु वहाँ भी सप्तमी, त्रयोदशी व नवमी पन्द्रस को भी २ बेला से अधिक भोजन व जल न लेवे।

जघन्य प्रोषधोपवास में २ विधि हैं—१ सप्तमी त्रयोदशी व नवमी पन्द्रस को एकाशन करे और अष्टमी चतुर्दशी को नीरस एक बार आहार लेवे। २—सप्तमी त्रयोदशी को व नवमी पन्द्रस को २ बेला से अधिक आहार व जल न लेवे तथा अष्टमी चतुर्दशी को एक बार नीरस आहार लेवे।

प्रोषध का अर्थ है एक बार भोजन करना या औषधि की तरह भोजन करना, उपवास का अर्थ अनशन करना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

व आत्मा के समीप बसना है, प्रोषधपूर्वक उपवास करने को प्रोषधोपवास कहते हैं।

उपवास के [illegible]ल में गृहारंभ त्याग कर धर्मध्यान में उपयोग लगाना चा[illegible]।

भोगोपभोगपरिमाणव्रत—भोग और उपभोग का परिमाण करना सो भोगोपभोगपरिमाणव्रत है।

जो वस्तु एक बार ही भोगने में आ सके उसे भोग कहते हैं, जैसे—भोजन, सब्जी, फल, तैल आदि।

जो वस्तु पुनः भोगने में आ सके उसे उपभोग कहते हैं, जैसे—वस्त्र, चारपाई, सवारी आदि।

अतिथिसंविभागव्रत—मुनि, अर्यिका, श्रावक, श्राविकाओं को आहार, शास्त्र, औषिधि, अभय इन ४ प्रकार का भक्तिपूर्वक दान करना अतिथिसंविभागव्रत है।

दीन अनाथ दुःखी जीवों को भी करुणापूर्वक आवश्यक उचित वस्तु देना समर्थकों का कर्तव्य है।

३—सामायिकप्रतिमा—प्रातः मध्याह्न व सायंकाल विधिपूर्वक निरतिचार २ घड़ी, ४ घड़ी या ६ घड़ी तक सामायिक करना सामायिक प्रतिमा है। १ घड़ी २४ मिनट की होती है।

४—प्रोषधप्रतिमा—निरतिचार अष्टमी व चतुर्दशी को

http://www.jainkosh.org

प्रोषधोपवास करना प्रोषधप्रतिमा है।

५—सचित्तत्याग प्रतिमा—कच्चे हरित बनस्पति आदि के खाने का त्याग करना सचित्तत्याग प्रतिमा है।

६—रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमा—मन, वचन, काय व कृत, कारित, अनुमोदना से रात्रि को भोजन का त्याग करना सो रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमा है। रात्रिभोजन का त्याग यद्यपि पहली प्रतिमा में हो चुका तथापि इस प्रतिमा में श्रावक रात्रि को किसी को खिलाता भी नहीं और न अनुमति भी देता है।

७—ब्रह्मचर्य प्रतिमा—स्त्रीमात्र का त्याग करना ब्रह्मचर्य प्रतिमा है।

८—आरंभत्याग प्रतिमा—व्यापार आदि गृहारंभ का त्याग करना आरंभ त्याग प्रतिमा है।

९—परिग्रहत्याग प्रतिमा—अत्यन्त आवश्यक वस्त्रों व २-१ बर्तनों के सिवाय शेष खेत, मकान आदि सब परिग्रह का त्याग करना परिग्रहत्याग प्रतिमा है।

१०—अनुमतित्याग प्रतिमा—गृह कार्य की व भोजनादि की अनुमति नहीं देना अनुमतित्याग प्रतिमा है। अनुमतित्यागी श्रावक को आहार के समय जो बुलावे उस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

के यहां समतापूर्वक भोजन करता है, और अपना समय धर्मध्यान में व्यतीत करता है।

११—उद्दिष्टत्याग प्रतिमा—अपने निमित्त से बनाये हुये भोजन का त्याग करना सो उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा है।

इस प्रतिमाधारी के २ भेद हैं—१ क्षुल्लक, २ ऐलक। क्षुल्लक १ लंगोटी और १ उत्तरीय वस्त्र (चादर) धारण करते हैं।

ऐलक केवल लंगोटी ही धारण करते हैं, केशलोंच करते हैं तथा हाथ में ही भोजन करते हैं।

पहिली से छटी प्रतिमाधारी तक जघन्य श्रावक, ७-८-९वीं प्रतिमाधारी मध्यम श्रावक व दशमी व ग्यारवीं प्रतिमाधारी उत्तम श्रावक कहलाते हैं।

प्रश्नावली

१—नैष्ठिक श्रावक किसे कहते हैं ? और नैष्ठिक श्रावक के कितनी प्रतिमा होती हैं ? नाम सहित लिखो।

२—परिग्रहपरिमाणाणुव्रत, दिग्व्रत, अपध्यानविरति अनर्थ दण्ड व्रत, भोगोपभोगपरिमाणव्रत का लक्षण लिखो।

३—सामायिक करने की विधि लिखो।

४—मध्यम प्रोषधोपवास की विधि लिखो।

५—प्रोषध और उपवास का शब्दार्थ क्या है ?

६—दिग्व्रत—देशव्रत में, भोग-उपभोग में प्रोषध-उपवास में, क्षुल्लक-ऐलक में क्या अंतर है ?

७—सचित्तत्याग प्रतिमा आरंभत्याग प्रतिमा, अनुमतित्याग प्रतिमा का लक्षण लिखो।

८—जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट श्रावक किन किन प्रतिमा के धारी होते हैं।

९—यदि कोई दशमी प्रतिमा का पालन करे और सामायिक प्रतिमा का पालन न करे तब वह अनुमति त्यागी है या नहीं ? और क्यों ?

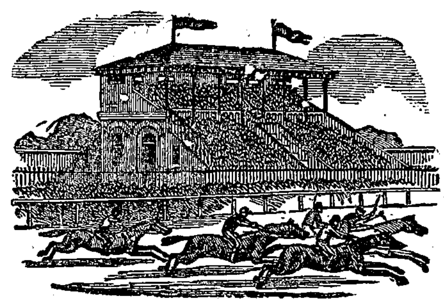

Report any errors at vikasnd@gmail.com

पाठ ३

अहिंसा

कषाय से अपने व दूसरों के प्राणों का घात करना स्वयं दुखी होना व दूसरों को दुखी करना हिंसा है और हिंसा के न होने को अहिंसा कहते हैं।

सुख, शांति, अहिंसा के बिना नहीं हो सकती है, अहिंसा से तो सदा के लिये संसार के सब दुख छूट जाते हैं।

झूंठ बोलना, चोरी करना, कुशील सेवना, परिग्रह जोड़ना सब हिंसा ही तो हैं, क्योंकि कषायों के बिना इन सब पापों को कोई नहीं कर सकता, इसलिये अहिंसा होने से सब पाप छूट जाते हैं।

पूर्ण अहिंसा का पालन तो साधु ही कर सकते हैं। गृहस्थ एक देश अहिंसा का पालन कर सकता है।

हिंसा ४ प्रकार की होती है—१ संकल्पी, २ आरंभी, ३ उद्यमी, ४ विरोधी हिंसा।

संकल्प से किसी प्राणी का घात करना या दिल दुखाना संकल्पी हिंसा है।

http://www.jainkosh.org

रसोई बनाना आदि आरम्भ सावधानी से करते हुये भी उसमें जो हिंसा हो जाती हो, उसे आरम्भी हिंसा कहते हैं।

व्यापार आदि में सावधानी रखते हुए भी उसमें जो हिंसा हो जाती हो उसे उद्यमी हिंसा कहते हैं।

किसी दुष्ट पुरुष या सिंह आदि जानवर के द्वारा आक्रमण होने पर उसके बचाव में जो हिंसा होती है उसे विरोधी हिंसा कहते हैं।

साधु संकल्प, आरम्भ, उद्यम व प्रत्याक्रमण सम्बंधी चारों हिंसावों के त्यागी हैं अतः साधु पूर्ण अहिंसक हो सकते हैं।

गृहस्थ आरम्भ, उद्यम व प्रत्याक्रमण का त्यागी न हो सकने से गृहस्थ संकल्पी हिंसा का ही त्यागी हो सकता है।

हमें अहिंसा के पाठ से यह शिक्षा लेना चाहिये कि कितने ही बाधा और उपसर्ग के आने पर भी हम दूसरे पर या अपने में क्रोध न करें।

जगत को स्वप्नवत् असार जानकर धन वैभव अधिकार ज्ञान रूप बल पाकर भी कभी अभिमान न करें।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

संसार के सब पदार्थों को क्षणिक व अहित जानकर किसी वस्तु का लालच न करें और न किसी प्रकार का छल कपट का व्यवहार रखें तथा शरीर को अपवित्र घिनावना जान कर इसमें मोह न करें और न अपने मन में कामविकार का भाव आने दें। तभी हम अहिंसक बन सकते हैं और सुखी हो सकते हैं।

प्रश्नावली

१—हिंसा और अहिंसा किसे कहते हैं ?
२—अहिंसा से क्या लाभ है ?
३—अहिंसक पुरुष कोई पाप कर सकता या नहीं और कैसे ?
४—साधु और गृहस्थ की अहिंसा में कोई अंतर है या नहीं ?
५—हिंसा कितने प्रकार की होती है और उनमें से गृहस्थ किस हिंसा का त्यागी होता ।
६—आरंभी और विरोधी हिंसा किसे कहते हैं ?
७—अहिंसा के पाठ से तुम्हें क्या शिक्षा मिली ?

पाठ ४

परमेष्ठी

परमेष्ठी—उन्हें कहते हैं जो परमपद में स्थित हों।

परमेष्ठी ५ होते हैं—१ अरहंत, २ सिद्ध, ३ आचार्य, ४ उपाध्याय, ५ साधु।

अरहंत उन्हें कहते हैं जिनके अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतशक्ति ये चार अनंत चतुष्टय प्रकट हो गये हों तथा जिनमें जन्म जरा मरण क्षुधा तृषा विस्मय पीडा खेद रोग शोक मद मोह भय निद्रा चिन्ता स्वेद राग और द्वेष ये१८ दोष न हों।

अरहंत २ प्रकार के हैं—१ तीर्थंकर अरहंत, २ सामान्य अरहंत।

तीर्थंकर अरहंत के ४२ गुण और भी होते हैं, तथा सामान्य अरहंतों के ४२ गुणों में यथा योग्य कम होते हैं ४२ गुण ये हैं—१० जन्म के अतिशय, १० केवलज्ञान के अतिशय, १४ देवकृत अतिशय व ८ प्रातिहार्य।

इन ४२ गुणों में ४ अनंतचतुष्टय मिलने से अरहंत के सर्व मूल गुण ४६ होते हैं—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

"चौतीसों अतिशय सहित प्रातिहार्य पुनि आठ।
अनंत चतुष्टय गुण सहित छीयालीसों पाठ।

जन्म के १० अतिशय

अतिशय रूप सुगंध तन नाहिं पसेव निहार।
प्रिय हित वचन अतुल्य बल रुधिर श्वेत आकार ॥ २ ॥
लक्षण सहसरु आठ तन समचतुष्क संठान।
वज्रवृषभ नाराच जुत ये जन्मत दस जान ॥ ३ ॥

केवलज्ञान के १० अतिशय

योजन शत इक में सुभिख गगनगमन मुखचार।
नहिं अदया उपसर्ग नहिं नाहीं कवलाहार ॥ ४ ॥
सब विद्या ईश्वरपनो नाहिं बढ़े नख केश।
अनिमिष दृग छाया रहित दस केवल के वेश ॥ ५ ॥

देवकृत १४ अतिशय

देवरचित हैं चारदश अर्धमागधी भाष।
आपस माँही मित्रता निर्मल दिश आकाश ॥ ६ ॥
होत फूल फल ऋतु सबै पृथ्वी काच समान।
चरण कमल तल कमल है नभ तैं जय जय बान ॥ ७ ॥
मन्द सुगन्ध बयार पुनि गन्धोदक की वृष्टि।

http://www.jainkosh.org

भूमि विषैं कण्टक नहीं हर्षमयी सब सृष्टि ॥ ८ ॥
धर्म चक्र आगे चले पुनि वसु मंगल सार।
(अतिशय श्री अरहंत के ये चौतीस प्रकार) ॥ ९ ॥

८ प्रातिहार्य

तरु अशोक के निकट में सिंहासन छविदार।
तीन छत्र शिर पर लसैं भामण्डल पिछवार ॥ १० ॥
दिव्यध्वनि मुख तैं खिरै पुष्पवृष्टि सुर होय।
ढोरैं चौसठ चमर जख बाजैं दुंदुभि जोय ॥ ११ ॥

अरहंत को केवली व सकलपरमात्मा भी कहते हैं।

सिद्ध परमेष्ठी के मूल गुण

सिद्ध परमेष्ठी उन्हें कहते हैं—जो आठों कर्मों का नाश कर शरीर से सदा के लिये अलग होकर अपने पूर्ण शुद्ध स्वभाव में स्थित रहते हों।

इनके मूल गुण आठ हैं—

सोरठा—समकित दर्शन ज्ञान अगुरुलघू अवगाहना।
सूक्षम वीरजवान निराबाध गुण सिद्ध के ॥१२॥

आचार्य परमेष्ठी के मूल गुण

आचार्य उन्हें कहते हैं—जो मुनियों के आचरण को

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वयं पालन करते हों व अन्य मुनियों को पालन कराते हों, दीक्षा व प्रायश्चित भी देते हों। आचार्य के मुख्य गुण ८ हैं—

१ आचार, २ व्यवहार, ३ आधार, ४ प्रकार, ५ आयापायदिक्, ६ उत्पीड, ७ अपरिश्राव, ८ सुखावह।

इनके अतिरिक्त आचार्य विशेष रूप से १२ तप, १० धर्म, ५ आचार, ६ आवश्यक, ३ गुप्ति का पालन करते हैं इस अपेक्षा से आचार्य के ३६ मूल गुण भी कहे गये हैं।

१२ तप—

अनशन ऊनोदर करैं व्रत संख्या रस छोर।
विविक्त शयन आसन धरैं कायकलेश सुठौर ॥१३॥
प्रायश्चित धर विनयजुत वैयावृत स्वाध्याय।
पुनि उत्सर्ग विचार के धरैं ध्यान मन लाय ॥१४॥

१० धर्म—

क्षमा मार्दव आर्जव सत्य वचन चितपाग।
संयम तप त्यागी सरव आकिंचन तियत्याग ॥१५॥

५ आचार—

दर्शन ज्ञान चरित्र तप वीरज पंचाचार।

३ गुप्ति—

गोपे मन वच काय को (गिन छत्तीस गुन सार) ॥१६॥
(मनोगुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति)

६ आवश्यक—

समता धर वंदन करै नाना थुती बनाय।
प्रतिक्रमण स्वाध्याय जुत कायोत्सर्ग लगाय ॥१७॥

उपाध्याय परमेष्ठी के गुण

उपाध्याय उन्हें कहते हैं—जो मुनि विशेष ज्ञाता हों और आचार्य द्वारा उपाध्याय पद पर नियत हों, ये स्वयं अध्ययन मनन करते हैं व अन्य मुनियों को पढ़ाते हैं।

उपाध्याय परमेष्ठी के मूलगुण अधिक से अधिक २५ होते हैं अर्थात् ११ अंग व १४ पूर्व का ज्ञान।

११ अङ्ग—

प्रथमहिं आचारांग गनि दूजो सूत्रकृतांग।
ठान अंग तीजो सुभग चौथो समवायांग ॥ १८ ॥
व्याख्यापण्णति पांचमों ज्ञातृकथा षट् आन।
पुनि उपासकाध्ययन है अन्तःकृत दशठान ॥ १९ ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अनुत्तरणउत्पाद दश, सूत्रविपाक पिछान ।
बहुरि प्रश्न व्याकरण जुत ग्यारह अंग प्रमान ॥२०॥

१ आचारांग, २ सूत्रकृतांग, ३ स्थानांग, ४ समवायांग, ५ व्याख्याप्रज्ञप्ति, ६ ज्ञातृकथांग, ७ उपासकाध्ययनांग, ८ अन्तःकृद्दशांग, ६ अनुत्तरोपपादिकदशांग, १० विपाकसूत्रांग, ११ प्रश्नव्याकरणांग ।

१४ पूर्व—

उत्पादपूर्व अग्रायणी तीजौ वीरजवाद ।
अस्तिनास्ति परवाद पुनि पंचम ज्ञानप्रवाद ॥ २१ ॥
छट्टो कर्मप्रवाद है सत्प्रवाद पहिचान ।
अष्टम आत्मप्रवाद पुनि नवमौ प्रत्याख्यान ॥२२॥
विद्यानुवाद पूरवदशम पूर्व कल्याण महंत ।
प्राणवाद किरिया बहुल, लोकविन्दु है अंत ॥२३॥

१ उत्पादपूर्व, २ अग्रायणीपूर्व, ३ वीर्यानुवादपूर्व, ४ अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व, ५ ज्ञानप्रवादपूर्व, ६ कर्मप्रवादपूर्व, ७ सत्यप्रवादपूर्व, ८ आत्मप्रवादपूर्व, ६ प्रत्याख्यानानुवादपूर्व, १० विद्यानुवादपूर्व, ११ कल्याणानुवादपूर्व, १२ प्राणानुवाद पूर्व, १३ क्रियाविशालपूर्व, १४ लोकविन्दुपूर्व ।

http://www.jainkosh.org

साधु के मूलगुण

साधु उसे कहते हैं—जो विषयों की आशा के वश न हो आरंभ परिग्रह से रहित हो, तथा ज्ञान ध्यान तप में लीन हो । साधु के मूलगुण २८ होते हैं—

५ महाव्रत, ५ समिति, ६ आवश्यक, ५ इन्द्रियविजय, ७ शेषगुण ।

५ महाव्रत—१ अहिंसामहाव्रत, २ सत्यमहाव्रत, ३ अचौर्यमहाव्रत, ४ ब्रह्मचर्यमहाव्रत, ५ परिग्रहत्यागमहाव्रत ।

हिंसा अनृत तस्करी अब्रह्म परिग्रह त्याग ।
मन वच तन तैं त्यागवों पंच महाव्रत पाय ॥२४॥

५ समिति—

ईर्या भाषा ऐषणा पुनि क्षेपण आदान ।
प्रतिष्ठापना जुत क्रिया पांचों समिति विधान ॥२५॥

१ ईर्यासमिति (४ हाथ आगे जमीन देखकर दिन के प्रकाश में निर्जन्तु पृथ्वी पर विशुद्ध भाव से चलना) । २ भाषासमिति (हित मित प्रिय वचन बोलना) । ३ ऐषणासमिति (श्रावक के यहां शुद्ध निर्दोष आहर लेना) । ४ आदाननिक्षेपणसमिति (शास्त्र कमण्डलु आदि को

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

देखकर धरना व उठाना)। ५ प्रतिष्ठापनासमिति (निर्जन्तु भूमि पर मल, मूत्र, कफ, थूक आदि क्षेपण करना)।

६ आवश्यकों का वर्णन कर चुके हैं।

५ इन्द्रियविजय—

सपरस रसना नासिका नयन श्रोत्र का रोध।
पांचों इन्द्रियों के विषयों को रोकना ५ इन्द्रिय विजय हैं।

७ शेष गुण—

देह दन्त मंजन नहीं अवसन एकाहार।
केश लुंच शुचि भूशयन अल्प संस्थिताहार॥

१ स्नान का त्याग, २ दंतमंजन का त्याग, ३ वस्त्रों का त्याग, ४ एक बार आहार करना, ५ केशलोंच करना, ६ प्रासुक भूमि पर अल्प शयन करना, ७ खड़े खड़े अल्प आहार लेना।

साधु में सर्व प्रधान गुण समता है अर्थात् जिनके शत्रु मित्र में, बन नगर में, स्तुति निन्दा में, लाभ अलाभ में, राग द्वेष न हो वे साधु हैं।

प्रश्नावली

१—परमेष्ठी का लक्षण लिखकर परमेष्ठी के भेद नाम सहित लिखो।

२—तीर्थंकर अरहंत और सामान्य अरहंत में क्या अंतर है ?

३—केवल ज्ञान के अतिशयों को लिखकर उन का जो मतलब समझे हो वह लिखो।

४—अरहंत भगवान् के समस्त अतिशय कितने हैं ?

५—देवकृत अतिशय का क्या अर्थ है ? देवकृत अतिशय कितने होते हैं ?

६—प्रातिहार्य कितने होते हैं दोहा व नाम लिखो।

७—सिद्धपरमेष्ठी के मूलगुणों के नाम लिखो।

८—आचार्यों के मूलगुणों के नाम लिखकर आवश्यक और धर्मों के भेदों के नाम लिखो ?

९—पूर्व कितने होते हैं नाम लिखो।

१०—उपाध्याय परमेष्ठी में मूलगुण २५ ही होते या कम भी हो सकते ?

११—साधु के मूलगुणों के नाम लिख कर समिति के भेदों के अर्थ लिखो।

१२—साधु में सबसे मुख्य बात क्या होना चाहिये ?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

पाठ ५

आत्मकीर्तन

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम ।
ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ॥ टेक ॥

मैं वह हूँ जो है भगवान ।
जो मैं हूँ वह है भगवान ॥
अन्तर यही ऊपरी जान ।
वे विराग यहँ रागवितान ॥१॥

मम स्वरूप है सिद्ध समान ।
अमित शक्ति सुख ज्ञाननिधान ॥
किन्तु आश वश खोया ज्ञान ।
बना भिखारी निपट अजान ॥२॥

सुख दुख दाता कोई न आन ।
मोह राग रुष दुख की खान ॥
निज को निज पर को पर जान ।
फिर दुख का नहिं लेश निदान ॥३॥

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम ।
विष्णु बुद्ध हरि जिस के नाम ॥

http://www.jainkosh.org

राग त्यागि पहुँचूं निज धाम ।
आकुलता का फिर क्या काम ॥४॥

होता स्वयं जगत परिणाम ।
मैं जग का करता क्या काम ॥
दूर हटो परकृत परिणाम ।
सहजानंद लखूं अभिराम ॥५॥

भावार्थ

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम ।
ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ॥टेक॥

मैं आत्मा जिसमें न रूप है, न रस है, न गंध है, न स्पर्श, तथा जो अनादिकाल से है और अनंतकाल तक रहेगा, शरीर से भी जुदा है, इन्द्रियों से जानने में नहीं आता, परन्तु विषय कषायों में उपयोग न होने पर अपने ही सहजज्ञान द्वारा अनुभव में आता है ऐसा मैं आत्मा स्वतन्त्र हूँ अर्थात् किसी के आधीन मेरा परिणमन सुख दुःख आदि नहीं है, अपनी ही करनी करता और उसका फल भोगता तथा स्वयं अपने स्वरूप में स्थित होकर मुक्त होऊंगा ।

निश्चल हूँ—अनादि से लेकर अब तक कितने ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भवों में भटका कितने ही कषायों से दबा तथापि मेरा चैतन्य स्वरूप चलायमान नहीं हुआ, मैं अचेतन नहीं हुआ, और निश्चल ही रहूँगा।

निष्काम हूँ—काम, कामना, इच्छा से रहित चैतन्य स्वभावी हूँ।

ऐसा मैं आत्मा ज्ञाता द्रष्टा हूँ,
जानने देखने स्वभाववाला हूँ।
मैं वह हूँ जो है भगवान,
जो मैं हूँ वह है भगवान ॥
अन्तर यही ऊपरी जान,
वे विराग यहँ रागवितान ॥१॥

मैं जैसा शक्तिरूप हूँ भगवान का वैसा स्वरूप व्यक्त है तथा जो भगवान का स्वरूप व्यक्त है वह मेरा स्वभाव है परन्तु मुझ में और परमात्मा में केवल यह ऊपरी अन्तर है जो वहां राग नहीं है और यहां राग का फैलाव है।

यह अन्तर ऊपरी है क्योंकि स्वभाव में भेद नहीं। यदि राग मेरे स्वभाव में आजाय तब रागादि कभी हट नहीं सकते, फिर धर्म, तप, व्रत सब व्यर्थ हो जाँयगे और आत्मा के उत्थान का मार्ग ही न रहेगा।

मम स्वरूप है सिद्ध समान।
अमितशक्ति सुख ज्ञाननिधान ॥
किन्तु आशवश खोया ज्ञान।
बना भिखारी निपट अजान ॥२॥

मेरा स्वरूप परम पवित्र शुद्ध स्वरूप सिद्ध भगवान के समान है, अनंत शक्ति, अनंत सुख, अनंतज्ञान, अनंत दर्शन का भण्डार है, किन्तु अत्यन्त भिन्न पर पदार्थों की आशा के वश होकर अपने ज्ञान को गमा दिया है और बिलकुल अज्ञान सा होकर भिखारी अर्थात् पर पदार्थ की आशा करने वाला बन गया।

सुख दुख दाता कोई न आन।
मोह राग रुष दुख की खान ॥
निज को निज पर को पर जान।
फिर दुख का नहीं लेश निदान ॥३॥

सुख और दुख का देने वाला अन्य कोई नहीं है, मेरा मोह राग और द्वेष भाव ही दुख की खान है। हे आत्मन्! अब निज को निज और पर को पर समझो फिर दुख का कोई कारण न रहेगा।

वास्तव में यह भ्रम ही क्लेश बढ़ाता है 'कि मुझे सुख और दुख का देने वाला कोई दूसरा पदार्थ है और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

मैं दूसरों को सुख दुख देने वाला हूं' । क्योंकि इन भावों में दीनता और अहंकार भरा हुआ है जो आकुलता करता है । इस भाव को समाप्त करो और अपने व जगत के स्वरूप को ठीक समझो ।

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम ।
विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ॥
राग त्यागि पहुँचूं निज धाम ।
आकुलता का फिर क्या काम ॥४॥

जिन अर्थात् जिन्होंने रागद्वेषादि कषायों को जीत लिया है शिव—जो स्वयं सुख स्वरूप है, ईश्वर—जो स्वयं अपनी अवस्थाओं के करने में प्रभु है । राम—जिस स्वरूप में योगी जन रमण करते हैं, विष्णु—जो अपनी ज्ञानक्रिया से सर्वत्र व्यापक है । बुद्ध—वो सर्वज्ञाता है । हरि—जिसने पाप मल को हर लिया है ।

ये सब जिस के नाम हैं ऐसे आत्म स्वभाव में यदि परविषयक रागादि छोड़ कर मैं पहुँचूँ, फिर उस दशा में आकुलता का क्या काम है अर्थात् वहां आकुलता नहीं रहती ।

होता स्वयं जगत परिणाम ।
मैं जग का करता क्या काम ॥

http://www.jainkosh.org

दूर हटो परकृत परिणाम ।
सहजानंद लखूं अभिराम ॥५॥

संसार के समस्त द्रव्यों का परिणमन स्वयं (अपने अपने उपादान से) हो रहा है, मैं उनका क्या काम कर रहा हूँ अर्थात् मैं किसी भी पदार्थ में मिल कर नहीं परिणमता, हाँ ! जिस पदार्थ का जब जो परिणमन होता वहां अन्य द्रव्य, चाहे दूसरा हो या मैं होऊं, निमित्त रहता है ।'

अन्य की तो बात दूर रहो जो इस संसार अवस्था में राग द्वेष आदि भाव होते हैं, वे पर के निमित्त से होते हैं, अतः उन रागादि भाव स्वरूप भी मैं नहीं हूं । ये परकृत परिणाम दूर हटें और मैं सहज आनन्द स्वरूप निज स्वभाव को आत्मा के सर्व ओर देखूँ ।

प्रश्नावली

१—आत्मकीर्तन के अन्त के ३ छन्द लिखो ।
२—सुख दुख दाता कोई न आन इस छंद को अर्थ सहित लिखो ।
३—हरि बीष्णु बुद्ध शिव जिन इनका आत्मीय अर्थ क्या है ।
४—आत्मकीर्तन की टेक का अर्थ लिखो ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

५—तुममें और परमात्मा में क्या अन्तर है और कैसा है और क्यों ?

६—तुम जगत (पर पदार्थ) के करने वाले क्यों नहीं हो।

७—आत्मकीर्तन का भी कोई कर्ता है क्या ?

८—आत्मा का स्वरूप (स्वभाव) किस के समान है।

९—यदि तुम सिद्ध के समान स्वरूप वाले हो तब दीन क्यों हो रहे हो।

पाठ ६

कर्म

कर्म—उन्हें कहते हैं जो आत्मा के वास्तविक स्वभाव को प्रगट न होने दें।

इस लोक में सब जगह कर्माण वर्गणायें भरी हुई हैं, जब आत्मा कषाय करता है तब वे कर्म रूप बँध जाती हैं और उनमें फल के निमित्त होने की शक्ति हो जाती है।

कर्म ८ होते हैं—१ ज्ञानावरण, २ दर्शनावरण, ३ वेदनीय, ४ मोहनीय, ५ आयु, ६ नाम, ७ गोत्र, ८ अन्तराय।

ये ८ मूल कर्म हैं, इनकी उत्तरप्रकृतियाँ १४८ होती हैं, वे इस प्रकार हैं—

ज्ञानावरण की ५, दर्शनावरण की ९, वेदनीय की २, मोहनीय की २८, आयु की ४, नामकर्म की ९३, गोत्रकर्म की २, अन्तराय कर्म की ५।

ज्ञानावरण कर्म उसे कहते हैं—जिसके उदय से आत्मा के ज्ञानगुण का योग्य विकास न हो।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

—: वाचनालय :—
पु० नं०.................

ज्ञानावरणकर्म के ५ भेद हैं—१ मतिज्ञानावरण, २ श्रुतज्ञानावरण, ३ अवधिज्ञानावरण, ४ मनःपर्ययज्ञानावरण, ५ केवलज्ञानावरण।

मतिज्ञानावरण—मन और इन्द्रियों के निमित्त से जो ज्ञान होता है वह मतिज्ञान है, और उस मतिज्ञान को जो प्रगट न होने दे उसे मतिज्ञानावरण कहते हैं।

श्रुतज्ञानावरण—मतिज्ञान से जाने हुये पदार्थ में विशेष ज्ञान होना श्रुतज्ञान है और जो श्रुतज्ञान को प्रगट न होने दे उसे श्रुतज्ञानावरण कहते हैं।

अवधिज्ञानावरण—मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना आत्मीय शक्ति से द्रव्यक्षेत्र काल भाव की मर्यादा लेकर रूपी पदार्थों को जानना अवधिज्ञान है और जो अवधिज्ञान को प्रगट न होने दे उसे अवधिज्ञानावरण कहते हैं।

मनःपर्ययज्ञानावरण—मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना आत्मीय शक्ति से दूसरे के मन के विचार को और विचार में आये हुये रूपी पदार्थ को जानना मनःपर्ययज्ञान है और जो मनःपर्ययज्ञान को न होने दे उसे मनःपर्ययज्ञानावरण कहते हैं।

http://www.jainkosh.org

केवलज्ञानावरण—तीन लोक व तीन काल के सब पदार्थों को केवल आत्मीयशक्ति से एक साथ स्पष्ट जानने वाले ज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं और जो केवलज्ञान को प्रगट न होने दे उसे केवलज्ञानावरण कहते हैं।

दर्शनावरण कर्म

दर्शनावरण—उसे कहते हैं जिसके उदय से आत्मा का दर्शनगुण प्रगट न हो।

दर्शनावरणकर्म की ९ प्रकृतियाँ हैं—१ चक्षुदर्शनावरण, २ अचक्षुदर्शनावरण, ३ अवधिदर्शनावरण, ४ केवलदर्शनावरण, ५ निद्रा, ६ निद्रानिद्रा, ७ प्रचला, ७ प्रचलाप्रचला, ९ स्त्यानगृद्धि।

चक्षुर्दर्शनावरण—चक्षुरिन्द्रिय के निमित्त से जो ज्ञान होता है उससे पहिले होने वाले सामान्यप्रतिभास को चक्षुर्दर्शन कहते हैं उसे जो प्रगट न होने दे वह चक्षुर्दर्शनावरण है।

अचक्षुर्दर्शनावरण—नेत्र के सिवाय बाकी इन्द्रिय और मन के निमित्त से होने वाले ज्ञान से पहिले जो सामान्यप्रतिभास है वह अचक्षुर्दर्शन है और जो अचक्षु-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दर्शन को प्रगट न होने दे उसे अचक्षुदर्शनावरण कहते हैं।

अवधिदर्शनावरण—अवधिज्ञान से पहिले होने वाले सामान्यप्रतिभास को अवधिदर्शन कहते हैं और जो अवधिदर्शन का आवरण करे उसे अवधिदर्शनावरण कहते हैं।

केवलदर्शनावरण—केवल ज्ञान के साथ साथ होने वाले सामान्यप्रतिभास को केवलदर्शन कहते हैं और जो केवलदर्शन को प्रगट न होने दे उसे केवलदर्शनावरण कहते हैं।

निद्रा (दर्शनावरणकर्म) उसे कहते हैं—जिसके उदय से नींद आवे।

निद्रानिद्रा उसे कहते हैं—जिसके उदय से पूरी नींद लेकर भी फिर सो जावे।

प्रचला उसे कहते हैं—जिसके उदय से बैठे बैठे या कोई कार्य करते करते सोता रहे, अर्थात् कुछ सोता रहे कुछ जागता रहे।

प्रचलाप्रचला उसे कहते हैं—जिसके उदय से सोते हुए मुख से लार बहने लगे और कुछ अङ्ग उपांग भी चलते रहें।

स्त्यानगृद्धि उसे कहते हैं—जिसके उदय से नींद में ही अपनी शक्ति से बाहर कोई काम करले और जगने पर मालूम भी न हो कि मैंने क्या किया।

वेदनीयकर्म

वेदनीयकर्म उसे कहते हैं—जिसके उदय से इन्द्रियों के द्वारा इन्द्रियों के विषयों का अनुभव हो। इससे जीव सुख या दुख का वेदन करता है।

वेदनीयकर्म के २ भेद हैं—१ सातावेदनीय, २ असातावेदनीय।

सातावेदनीय उसे कहते हैं—जिसके उदय से इन्द्रियसुखरूप अनुभव हो।

असातावेदनीय उसे कहते हैं—जिसके उदय से दुःखरूप अनुभव हो।

मोहनीयकर्म

मोहनीयकर्म उसे कहते हैं—जिसके उदय से मोह, राग और द्वेष उत्पन्न हो।

इसके मूल २ भेद हैं—१ दर्शनमोहनीय, २ चारित्रमोहनीय।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

दर्शनमोहनीय उसे कहते हैं–जिसके उदय से आत्मा के सम्यग्दर्शन गुण का घात हो।

चारित्रमोहनीय उसे कहते हैं—जिसके उदय से आत्मा के चारित्रगुण का घात हो।

दर्शनमोहनीय के ३ भेद हैं–१ मिथ्यात्व, २ सम्यग्मिथ्यात्व, ३ सम्यक्प्रकृति।

मिथ्यात्व उसे कहते हैं—जिसके उदय से मोक्षमार्ग का श्रद्धान न हो सके और शरीर आदि पर पदार्थों में व पर्याय में आत्मबुद्धि हो।

सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति उसे कहते हैं–जिसके उदय से मिश्र परिणाम हों, जिन्हें न तो केवल सम्यक्त्वरूप कह सकते हैं और न केवल मिथ्यात्व रूप कह सकते हैं।

सम्यक्प्रकृति उसे कहते हैं—जिसके उदय से सम्यग्दर्शन का पूर्ण घात तो न हो, परन्तु उसमें चल मलिन अगाढ दोष उत्पन्न हों।

चारित्रमोहनीय के २ भेद हैं—१ कषाय, २ नोकषाय।

कषाय के १६ भेद हैं—१–४ अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ,। ५–८ अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ। ९–१२ प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ। १३-१६ संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ।

नोकषाय के ९ भेद हैं–१ हास्य, २ रति, ३ अरति, ४ शोक, ५ भय, ६ जुगुप्सा, ७ पुंवेद, ८ स्त्रीवेद, ९ नपुंसकवेद।

अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ उन्हें कहते हैं—जिनके उदय से आत्मा का सम्यग्दर्शन प्रकट न हो व स्वरूपाचरण चारित्र प्रकट न हो।

अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ उन्हें हैं—जिनके उदय से देशचारित्र प्रकट न हो सके।

प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ उन्हें कहते हैं–जिनके उदय से सकलचारित्र प्रकट न हो सके।

संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ उन्हें कहते हैं—जिनके उदय से यथाख्यातचारित्र प्रकट न हो सके।

हास्य प्रकृति उसे कहते हैं—जिसके उदय से हँसी आवे।

रतिप्रकृति उसे कहते हैं—जिसके उदय से इष्टविषय में प्रीति उपजै।

http://sahjanandvarnishastra.org/

अरतिप्रकृति उसे कहते हैं—जिसके उदय से अनिष्ट विषय में द्वेष उपजै।

शोक प्रकृति उसे कहते हैं—जिसके उदय से शोक हो।

भय प्रकृति उसे कहते हैं—जिसके उदय से डर हो।

जुगुप्सा प्रकृति उसे कहते हैं—जिसके उदय से ग्लानि हो।

पुंवेद उसे कहते हैं—जिसके उदय से स्त्री से रमने के परिणाम हों।

स्त्रीवेद उसे कहते हैं—जिसके उदय से पुरुष से रमने के परिणाम हों।

नपुंसक वेद उसे कहते हैं—जिसके उदय से पुरुष व स्त्री दोनों से रमने के परिणाम हों।

३ दर्शनमोहनीय, २५ चारित्रमोहनीय, सब मिल कर मोहनीय कर्म की २८ प्रकृतियां हैं।

आयुकर्म

आयुकर्म उसे कहते—जिसके उदय से आत्मा शरीर में रुका रहे।

आयुकर्म के ४ भेद हैं—१ नरकायु, २ तिर्यगायु, ३ मनुष्यायु, ४ देवायु।

नरकायु उसे कहते हैं—जिसके उदय से आत्मा नारक शरीर में रुका रहे।

तिर्यगायु उसे कहते हैं—जिसके उदय से आत्मा तिर्यञ्च के शरीर में रुका रहे।

मनुष्यायु उसे कहते हैं—जिसके उदय से आत्मा मनुष्य के शरीर में रुका रहे।

देवायु उसे कहते हैं—जिसके उदय से आत्मा देव के शरीर में रुका रहे।

नामकर्म

नामकर्म उसे कहते हैं—जिसके उदय से नाना प्रकार के शरीर व शारीरिक भावों की रचना हो।

नामकर्म के ९३ भेद हैं—गति ४, जाति ५ शरीर ५, अङ्गोपांग ३, निर्माण, बंधन ५, संघात ५, संस्थान ६, संहनन ६, स्पर्श ८, रस ५, गंध २, वर्ण ५, आनुपूर्व्य ४, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्‌वास, विहायोगति २, प्रत्येकशरीर, त्रस, बादर, पर्याप्ति, शुभ, सुभग, सुस्वर, स्थिर, आदेय, यशःकीर्ति,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

साधारणशरीर, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्ति, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अस्थिर, अनादेय, अयशःकीर्ति, तीर्थंकरप्रकृति।

गति (४ नरक तिर्यंच मनुष्य देव) नामकर्म उसे कहते हैं—जिसके उदय से नारक तिर्यंच मनुष्य देव के आकार शरीर हो व इन गति के योग्य भाव हो।

जाति (५—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय) नामकर्म उसे कहते हैं—जिसके उदय से गतियों में एकेन्द्रिय आदि सादृश्य धर्म सहित उत्पन्न हों।

शरीर (५—औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस, कार्माण) नामकर्म—जिसके उदय से शरीर की रचना हो।

औदारिक शरीर—मनुष्य तिर्यंचों के शरीर को कहते हैं, जिसके उदय से औदारिक शरीर की रचना हो उसे औदारिकशरीरनामकर्म कहते हैं।

वैक्रियक शरीर—देव नारकियों के शरीर को (जो छोटा, बड़ा, अनेक प्रकार किया जा सके) वैक्रियक शरीर कहते हैं, जिसके उदय से वैक्रियक शरीर की रचना हो उसे वैक्रियकशरीरनामकर्म कहते हैं।

आहारक शरीर—आहारकऋद्धिधारी प्रमत्त विरत मुनि के जब कोई शंका उत्पन्न हो या वंदना का भाव हो

http://www.jainkosh.org

तब उन मुनि के मस्तक से एक हाथ का, श्वेत, शुभ व्याघातरहित पुतला निकलता है, और वह केवली, तीर्थंकर आदि के दर्शन कर वापिस आकर मस्तक में समा जाता है उस समय मुनि के शंका दूर हो जाती है उस शरीर को आहारकशरीर कहते हैं और जिसके उदय से आहारकशरीर की रचना हो उसे आहारकशरीर नामकर्म कहते हैं।

तैजसशरीर—जो तेज (कांति) का कारण हो वह तैजस शरीर है, जिसके उदय से तैजस शरीर की रचना हो उसे तैजस शरीर नामकर्म कहते हैं।

कार्मणशरीर—कर्मों के समूह या कार्य को कार्मणशरीर कहते है, जिसके उदय से कार्मणशरीर की रचना हो उसे कार्मणशरीरनामकर्म कहते हैं।

अङ्गोपाङ्ग (३ औदारिक, वैक्रियक, आहारक अङ्गोपाङ्ग) नामकर्म उसे कहते हैं जिसके उदय से २ हाथ, २ पैर, नितम्ब, पीठ, हृदय, मस्तक इन ८ अङ्गों की व आंख नाक अंगुलि आदि उपाङ्गों की रचना हो।

निर्माणनामकर्म उसे कहते हैं जिसके उदय से ठीक ठीक स्थानपर व ठीक ठीक प्रमाण से अङ्ग उपाङ्गों की रचना हो।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बंधन नामकर्म (५ औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस, कार्मण) उसे कहते हैं जिसके उदय से शरीरों के परमाणु आपस में मिले रहें।

संघात नामकर्म (५–औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस, कार्मण) उसे कहते हैं जिसके उदय से शरीर के परमाणु बिना छिद्र के मिले रहें।

संस्थान नामकर्म (६–समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमंडल, स्वाति, वामन, कुब्जक, हुंडक) नामकर्म उसे कहते हैं जिस के उदय से शरीर की आकृति बनें।

समचतुरस्रसंस्थान नामकर्म के उदय से शरीर आकृति बिलकुल ठीक बनती है।

न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान नामकर्म के उदयसे बड़के पेड़ की तरह शरीर का आकार होता है, अर्थात् नाभि से नीचे के अंग छोटे और ऊपर के अङ्ग बड़े होते हैं।

स्वातिसंस्थान नामकर्म के उदय से शरीर का आकार सांप की बामी की तरह होता है, अर्थात नाभि से नीचे के अङ्ग बड़े और ऊपर के अङ्ग छोटे होते हैं।

वामनसंस्थान नामकर्म के उदयसे शरीर का आकार बौना होता है।

कुब्जकसंस्थान नामकर्म उसे कहते हैं जिसके उदय से शरीर कुबड़ा हो।

हुंडकसंस्थान नामकर्म के उदय से शरीर के अङ्ग उपाङ्ग खास शक्ल के नहीं होते, व बुरे आकार के बनते हैं।

संहनन नामकर्म (६ वज्रर्षभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलक, असंप्राप्तसृपाटिका संहनन) उसे कहते हैं जिसके उदय से शरीर की हड्डी आदि का बंधन विशेष हो।

वज्रर्षभनाराचसंहनन नामकर्म उसे कहते हैं जिसके उदय से बैठन, कीली, हड्डी वज्र के समान हों।

वज्रनाराचसंहनन नामकर्म उसे कहते हैं जिसके उदय से कीली और हड्डी वज्र के समान हों।

नाराचसंहनन नामकर्म उसे कहते हैं जिसके उदय से हड्डियों में कीली लगी रहती है।

अर्द्धनाराचसंहनन नामकर्म उसे कहते हैं जिसके उदय से हड्डियों की संधियां आधी कीलित होती हैं।

कीलकसंहनन नामकर्म उसे कहते हैं जिसके उदय से हड्डियों की संधियाँ कीलों से मिली हुई रहती हैं।

असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन नामकर्म उसे कहते हैं जिस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

के उदय से जुदी जुदी हड्डियाँ नसों से बँधी हुई रहती हैं।

स्पर्श (८–स्निग्ध, रूक्ष, शीत, उष्ण, मृदु, कठोर, लघु, गुरु) नामकर्म उसे कहते हैं जिसके उदय से शरीर में प्रतिनियत स्पर्श हो।

रस (५–अम्ल, मधुर, कटु, तिक्त, कषायित) नाम कर्म उसे कहते हैं जिसके उदय से शरीर में प्रतिनियत रस हो।

गंध (२ सुगंध, दुर्गंध) नाम कर्म उसे कहते हैं जिस के उदय से शरीर में प्रतिनियत गंध हो ।

वर्ण (५– कृष्ण, नील, पीत, रक्त, श्वेत) नामकर्म उसे कहते हैं जिसके उदय से शरीर में प्रतिनियत वर्ण (रूप) हो ।

आनुपूर्व्य (४नरकगत्यानुपूर्व्य, तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य, मनुष्यगत्यानुपूर्व्य, देवगत्यानुपूर्व्य) नामकर्म उसे कहते हैं जिसके उदय से विग्रहगति में आत्मा के प्रदेश पूर्व शरीर के आकार को धारण करें।

अगुरुलघु नाम कर्म— उसे कहते हैं जिसके उदय से न तो लोहे के गोले के समान भारी शरीर हो और न आकके तूलके समान हल्का शरीर हो ।

उपघात नामकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदयसे अपने ही

http://www.jainkosh.org

घात करने वाले अङ्ग उपाङ्ग या वात पित्तादि हों।

परघात नामकर्म–उसे कहते हैं जिसके उदय से दूसरों के घात करने वाले अङ्ग उपाङ्ग हों।

आतपनामकर्म–उसे कहते हैं जिसके उदय से आतप रूप शरीर हो।

उद्योतनामकर्म–उसे कहते हैं जिसके उदय से उद्योत-रूप शरीर हो।

उच्छ्वासनामकर्म–उसे कहते हैं जिसके उदय से श्वास उच्छ्वास की क्रिया हो।

विहायोगति (२ प्रशस्त, अप्रशस्त) नामकर्म–उसे कहते हैं जिसके उदय से गमन हो।

प्रत्येकशरीर नामकर्म–उसे कहते हैं जिसके उदय से एक शरीर का स्वामी एक जीव हो।

त्रसनामकर्म–उसे कहते हैं जिसके उदय से द्वीन्द्रिय आदि जीवों में जन्म हो।

सुभगनामकर्म–उसे कहते हैं जिसके उदय से विरूप आकार होकर भी दूसरों को प्रीति उत्पन्न हो।

सुस्वरनामकर्म–उसे कहते हैं जिसके उदय से अच्छा स्वर हो।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शुभनामकर्म–उसे कहते हैं जिसके उदय से सुन्दर अवयव हों।

बादरनामकर्म–उसे कहते हैं जिसके उदय से दूसरों के बाधा का कारणभूत स्थूल शरीर हो।

पर्याप्तिनामकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से अपने अपने योग्य यथासंभव (आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन) पर्याप्तियों को पूर्ण करे।

स्थिरनामकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से शरीर के रसादिक धातु और वातादि उपधातु अपने अपने ठिकाने (स्थिर) रहें।

आदेयनामकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से कान्तिसहित शरीर हो।

यशःकीर्तिनामकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से यश और कीर्ति हो।

साधारणशरीरनामकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से अनेक आत्मा के उपभोग का कारणभूत एक शरीर हो।

स्थावरनामकर्म–उसे कहते हैं जिसके उदय से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति में जन्म हो।

दुर्भगनामकर्म–उसे कहते हैं जिसके उदय से रूपादिक

गुण सहित होने पर दूसरों को अच्छा न लगे।

दुःस्वरनामकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से स्वर अच्छा न हो।

अशुभनामकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से शरीर के अवयव सुन्दर न हों।

सूक्ष्मनामकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से ऐसा सूक्ष्म शरीर हो जो न स्वयं दूसरे शरीर से रुके न दूसरों को रोके।

अपर्याप्तिनामकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हो और मरण हो जाय।

अस्थिरनामकर्म उसे कहते हैं जिसके उदय से शरीर के धातु, उपधातु अपने अपने ठिकाने न रहे।

अनादेयनामकर्म–उसे कहते हैं जिसके उदय से कान्ति रहित शरीर हो।

अयशःकीर्तिनामकर्म–उसे कहते हैं जिसके उदय से अपयश और अकीर्ति हो।

तीर्थंकरनामकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से विशेष अतिशय सहित अर्हंत हो।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

गोत्रकर्म

संतानक्रम से चले आये हुये जीव के आचरण को गोत्रकर्म कहते हैं।

गोत्र कर्म के २ भेद हैं–१ उच्चगोत्र, २ नीचगोत्र।

उच्चगोत्रकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से जीव लोकमान्य कुल में देह धारण करे।

नीचगोत्रकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से जीव लोकनिन्द्य कुल में देह धारण करे।

अन्तरायकर्म

अन्तराय कर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से दान आदि में विघ्न हो।

अन्तरायकर्म के ५ भेद हैं–१ दानांतराय, २ लाभान्तराय, ३ भोगान्तराय, ४ उपभोगान्तराय, ५ वीर्यान्तराय।

दानान्तरायकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से दान में विघ्न हो।

लाभान्तरायकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से लाभ न हो सके।

http://www.jainkosh.org

भोगान्तरायकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से भोग न कर सके।

उपभोगान्तरायकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से उपभोग न कर सके।

वीर्यान्तरायकर्म—कसे कहने हैं जिसके उदय से शक्ति प्रगट न हो सके।

घातिया और अघातिया

८ कर्मों में से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार कर्मों को घातिया कर्म कहते हैं, और वेदनीय, आयु, नाम व गोत्र इन चार कर्मों को अघातिया कर्म कहते हैं।

घातिया—जो आत्मा के ज्ञान, दर्शन, सुख, शक्ति, गुण को घातें वे घातिया कर्म हैं।

अघातिया—जो आत्मा के गुणों को तो न घाते परन्तु घातने के सहायक शरीर आदि की रचना करावें वे अघातिया कर्म हैं।

प्रश्नावली

१—कर्म का लक्षण और कर्म के मूल भेदों के नाम लिखो।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

२—मनःपर्ययज्ञानावरण चक्षुदर्शनावरण स्त्यानगृद्धि के लक्षण लिखो।

३—ज्ञानावरण और दर्शनावरण में क्या अंतर है ?

४—असातावेदनीय, चारित्रमोहनीय, सम्यक् प्रकृति के लक्षण लिखो।

५—कषाय और नोकषायों के भेदों के नाम लिखो।

६—आयुकर्म के भेदों के नाम लिखकर यह बताओ तुम्हारे किस आयु का उदय है ?

७—नामकर्म की सब प्रकृतियों के नाम लिखो।

८—वज्रनाराचसंहनन, स्वाति संस्थान, देवगत्यानुपूर्व्य, तीर्थंकर प्रकृति इनके लक्षण लिखो।

९—तुम्हारी गति व जाति कौन सी है ?

१०-घातिया और अघातिया कर्म कौन कौन हैं ?

११-घातिया और अघातिया कर्म का क्या मतलब है ?

१२-निम्नलिखित जीवों के कौन से कर्म का उदय है ?

(क) रामू कभी कभी सोते हुए में मंदिर जी जाकर वापिस आकर सो जाता और जागने पर उसे मालूम भी नहीं होता कि किया।

(ख) रतनलाल का सब जगह यश फैला हुआ है।

(ग) प्रकाश को पहिले बहुत गुस्सा आता था परन्तु अब सब से प्रेम करता है।

(घ) महावीर प्रसाद की ईमानदारी के कारण दुकान

अच्छी चलती है।

(ङ) कमठ मर कर सांप हुआ।

(च) हुल्ली भाई का बहुत बड़ा पेट है जिससे उठा और चला नहीं जाता।

(छ) नैनसुख अंधा है और ज्ञानी होने पर भी कीर्ति नहीं हो पाती।

(ज) शान्तिस्वरूप का स्वर अच्छा है।

(झ) नरेश अपने भाई से बहुत प्रेम रखता है।

(ञ) एक बालक चाण्डाल के घर उत्पन्न हुआ।

(ट) बाहुबलि जी का बहुत मजबूत शरीर था।

(ठ) हनुमान जी का बहुत सुन्दर सुडौल ठीक आकार का शरीर था।

१३-प्रचला व प्रचलाप्रचला में निद्रा व निद्रानिद्रा में क्या अन्तर है।

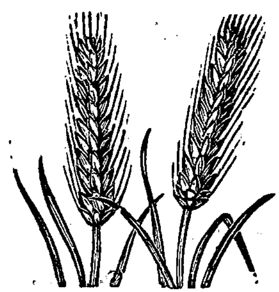

Report any errors at vikasnd@gmail.com

पाठ ७

निर्वाण काण्ड भाषानुवाद

(श्री भैया भगवतीदास जी कृत)

❀ दोहा ❀

वीतराग बन्दौं सदा भावसहित शिर नाय।
कहूँ काण्ड निर्वाण की भाषा सुगम बनाय ॥१॥

❀ चौपाई ❀

अष्टापद आदीश्वर स्वाम।
वासुपूज्य चम्पापुर नाम ॥
नेमिनाथ स्वामी गिरनार।
बन्दौं भाव भगति उर धार ॥२॥
चरम तीर्थंकर चरम शरीर।
पावापुर स्वामी महावीर ॥
शिखर सम्मेद जिनेश्वर बीस।
भाव सहित बन्दौं निशदीस ॥ ३ ॥
बरदत्त राय से इन्द मुनिंद।
सायरदत्त आदि गुणवृन्द ॥
नगरतारवर मुनि उँठ कोड़ि।
बन्दौं भावसहित कर जोड़ ॥४॥

श्री गिरनार शिखर विख्यात।
कोड़ि बहत्तर अरु सौ सात ॥
शंबु प्रद्युम्न कुमर द्वै भाय।
अनिरुध आदि नमूं तसु पाय ॥५॥
रामचन्द्र के सुत द्वै वीर।
लाड़ नरिंद आदि गुण धीर ॥
पाँच कोड़ि मुनि मुक्ति मंझार।
पावा गिर बंदौ निरधार ॥६॥
पाण्डव तीन द्रविड़ राजान।
आठ कोड़ि मुनि मुक्ति पयान ॥
श्री शत्रुंजय गिरि के शीश।
भाव सहित बंदौं निश दीस ॥७॥
जे बलभद्र मुकति में गये।
आठ कोड़ मुनि औरहु भये ॥
श्री गजपंथ शिखर सुविशाल।
तिनके चरण नमूं तिहुंकाल ॥८॥
राम हनू सुग्रीव सुडील।
गवगवाख्य नील महानील ॥
कोड़ि निन्यानवै मुक्ति पयान।
तुंगीगिर बंदौं धर ध्यान ॥९॥

http://sahjanandvarnishastra.org/

नंग अनंग कुमार सुजान।
पांच कोड़ि अरु अर्द्ध प्रमान ॥
मुक्ति गये सोनागिर शीश।
ते बंदौं त्रिभुवन पति ईश ॥१०॥

रावन के सुत आदिकुमार।
मुक्ति गये रेवातट सार ॥
कोटि पंच अरु लाख पचास।
ते बंदौं धरि परम हुलास ॥११॥

रेवा नदी सिद्धवर कूट।
पश्चिम दिशा देह जहं छूट ॥
द्वै चक्री दश काम कुमार।
आठ कोड़ि बंदौं भव पार ॥१२॥

बड़वानी बड़नयर सुचंग।
दक्षिण दिश गिरि चूल उतंग ॥
इन्द्रजीत अरु कुम्भ जु कर्ण।
ते बंदौं भव सागर तर्ण ॥१३॥

सुवरण भद्र आदि मुनि चार।
पावागिर वर शिखर मंझार ॥
चेलना नदी तीर के पास।
मुक्ति गये बंदौं नित तास ॥१४॥

फलहोडी बड़गाम अनूप।
पश्चिम दिशा द्रोणगिर रूप ॥
गुरुदत्तादि मुनीश्वर जहां।
मुक्ति गये बंदौं नित तहां ॥१५

बाल महाबाल मुनि दोय।
नागकुमार मिले त्रय होय ॥
श्री अष्टापद मुक्ति मंझार ॥
ते बंदौं नित सुरत संभार ॥१६॥

अचलापुर की दिश ईशान।
तहां मेढगिर नाम प्रधान ॥
साड़े तीन कोड़ि मुनिराय।
तिनके चरण नमूं चितलाय ॥१७॥

वंशस्थल वन के ढिग होय।
पश्चिम दिशा कुंथगिरि सोय ॥
कुल भूषण दिश भूषण नाम।
तिनके चरणनि करूं प्रणाम ॥१८॥

यशधर राजा के सुत कहे।
देश कलिंग पांच सौ लहे ॥
कोटि शिला मुनि कोटि प्रमान।
वंदन करूं जोरि जुग पान ॥१९॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

समवशरण श्री पार्श्व जिनंद ।
रेसंदी गिर नयनानंद ॥
वरदत्तादि पंच ऋषिराज ।
ते बंदौं नित धरम जहाज ॥२०॥
मथुरा पुर पवित्र उद्यान ।
जम्बू स्वामि गये निर्वाण ॥
चरम केवली पंचम काल ।
ते बंदौं नित धर्म जहाज ॥२१॥
तीन लोक के तीरथ जहां ।
नित प्रति बंदन कीजै तहां ॥
मन वच काय सहित शिर नाय ।
बंदन करहिं भविक गुण गाय ॥२२॥
संवत सतरह सौ इकताल ।
आश्विन सुदि दशमी सुविशाल ॥
"भैया" बंदन करहिं त्रिकाल ।
जय निर्वाण काण्ड गुणमाल ॥२३॥

जो भव्य आत्मा इस अवसर्पिणी काल में आठों कर्मों से छूट कर मोक्ष (निर्वाण) को प्राप्त हुए हैं उनमें से कुछ प्रसिद्ध पुरुषों के और उनके निर्वाण क्षेत्रों के

http://www.jainkosh.org

इस निर्वाण काण्ड में नाम दिये गये हैं। वास्तव में तो इस मनुष्य लोक में ऐसा कोई स्थान नहीं जहां से कोई निर्वाण को न प्राप्त हुआ हो।

प्रश्नावली

१—यह निर्वाण काण्ड किन का बनाया हुआ है ?

२—वह निर्वाण काण्ड किसका भाषानुवाद है ?

३—कुंथगिर, द्रोणगिर, सोनागिर, सम्मेदशिखर, गिरनार यहां से किन किन का निर्वाण जाना प्रसिद्ध है ?

४—श्री रामचन्द्र जी, कुम्भकर्ण जी, युधिष्ठिर भीम अर्जुन ये तीनों पाण्डव कहां से मुक्त हुए हैं ?

५—अष्टापद पर्वत कौनसा है व कहां है वहां तुम यात्रा को जा सकते हो अष्टापद से किन किन का निर्वाण होना प्रसिद्ध है

६—निर्वाण (सिद्ध) क्षेत्र किसे कहते हैं ?

७—क्या जिन क्षेत्रों के इस में नाम दिये गये हैं क्या यहीं से निर्वाण होता है ? या अन्य कहीं से भी निर्वाण होता रहता है ?

८—किन्हीं ५ क्षेत्रों का स्थान व मार्ग बताओ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पाठ ८

तत्व

वस्तु स्वरूप को तत्त्व कहते हैं, मोक्षमार्ग के प्रयोजन भूत तत्त्व ७ हैं—

१ जीव, २ अजीव, ३ आश्रव, ४ बंध, ५ संवर, ६ निर्जरा, ७ मोक्ष ।

जीव उसे कहते हैं—जिसमें चेतना गुण पाया जावे ।

अजीव उसे कहते हैं—जिसमें चेतना गुण न पाया जावे ।

आश्रव—कर्मों के आने को आश्रव कहते हैं ।

आश्रव के २ भेद हैं—१ भावाश्रव, २ द्रव्याश्रव ।

भावाश्रव—आत्मा के जिन भावों से कर्म आते हैं उन्हें भावाश्रव कहते हैं, जैसे—

ज्ञानावरण कर्म का आश्रव

किसी के पढ़ने में अन्तराय करना, किसी को धर्म की बात जान कर न बताना, पुस्तक फाड़ देना, अपने गुरु व किसी विद्वान् की निन्दा करना, अपने ज्ञान का घमंड करना, पढ़ने में आलस्य करना, मिथ्या उपदेश

देना आदि कार्यों से ज्ञानावरण कर्म का आश्रव होता है जिस कर्म के उदय से ज्ञान का विकास नहीं होता ।

दर्शनावरण कर्म का आश्रव—किसी के देखने में विघ्न करना, अपने देखने का घमंड करना, आँखें फोड़ना, दिन में सोना, साधुवों को देखकर ग्लानि करना, सज्जनों को दोष लगाना आदि कार्यों से दर्शनावरण कर्म का आश्रव होता है जिसके उदय से आत्मा के दर्शन गुण का विकास नहीं होता ।

सातावेदनीय का आश्रव—सब प्राणियों पर दया करना, दान देना, व्रत पालन करना, तृष्णा नहीं करना, क्षमाभाव रखना आदि कार्यों से सातावेदनीय का आश्रव होता है—जिसके उदय से लौकिक सुख होता है ।

असाता वेदनीय–दुःख करना व देना, शोक करना व कराना, पश्चात्ताप करना कराना, रोना रुलाना आदि कार्यों से असातावेदनीय का आश्रव होता है जिसके उदय से जीव दुःखी होता है ।

दर्शनमोहनीय का आश्रव—सच्चे देव, शास्त्र, गुरु को दोष लगाना, संघ व धर्म की निन्दा करना आदि कार्यों से दर्शनमोहनीय का आश्रव होता है जिसके उदय से मिथ्या भाव रहता है, आत्मस्वरूप का अनुभव नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कर सकता, संसार में भटकता है।

चारित्रमोहनीय का आश्रव—क्रोध मान माया लोभ करना, खोटे परिणाम करना, पाप करना आदि कार्यों से चारित्र मोहनीय का आश्रव होता है जिसके उदय से आनन्दमय आत्मस्वरूप में नहीं रह सकता और आकुलित होता है।

नरकायु का आश्रव—बहुत आरंभ, धंधा, व मूर्छा, हिंसा करने से नरकायु का आश्रव होता है जिसके उदय से नरक में घोर दुःख भोगना पड़ते हैं।

तिर्यगायु का आश्रव—छल कपट करने से तिर्यगायु का आश्रव होता है जिसके उदय से तिर्यंचों में जन्म होता है।

मनुष्यायु का आश्रव—थोड़ा, आरम्भ, थोड़ा परिग्रह रखने से मनुष्यायु का आश्रव होता है जिसके उदय से जीव मनुष्यगति में जन्म लेता है।

देवायु का आश्रव—व्रत करना, समता से भूख प्यास आदि की बाधा सहना आदि कार्यों से देवायु का आश्रव होता है जिसके उदय से जीव देवगति में जन्म लेता है।

शुभनाम कर्म का आश्रव—परस्पर बिना विरोध के रहना, मन वचन काय को सरल रखना किसी का बुरा

http://www.jainkosh.org

न करना और न बुरा सोचना, सत्पुरुषों को देखकर प्रसन्न रहना आदि कार्यों से शुभ नाम कर्म का आश्रव होता है जिसके उदय से शरीर सुन्दर व सुख का कारण होता है।

अशुभ नामकर्म का आश्रव—परस्पर झगड़ा करना, मन वचन काय को कुटिल करना, खोटी चेष्टा करना, किसी की नकल करना, कुदेवों को पूजना, चुगली करना, बुरा सोचना आदि कार्यों से अशुभनाम कर्म का आश्रव होता है जिसके उदय से शरीर विरूप और दुःख का कारण होता है।

उच्चगोत्र का आश्रव—दूसरों की प्रशंसा करना, अपनी निन्दा करना, विनयभाव से रहना, ऊँचे कार्य करना आदि कार्यों से उच्चगोत्र का आश्रव होता है जिसके उदय से उच्चकाल में जन्म होता है।

नीचगोत्र का आश्रव—अपनी प्रशंसा करना, दूसरों की निन्दा करना, घमंड करना, नीच कार्य करना आदि कार्यों से नीचगोत्र का आश्रव होता है जिसके उदय से नीच कुल में जन्म होता है।

अन्तरायकर्म का आश्रव—किसी के दान लाभ भोग

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उपभोग में व शक्ति के विकास में विघ्न करने से अन्तराय कर्म का आश्रव होता है जिसके उदय से जीव को दान लाभ भोग आदि का सुख प्राप्त नहीं हो सकता।

भावाश्रव के मूल भेद ४ हैं—१ मिथ्यात्व, २ अविरति, ३ कषाय, ४ योग।

मिथ्यात्व—आत्मा के सहज स्वभाव के अतिरिक्त पर पदार्थों को व विभावों को अपना मानना मिथ्यात्व है।

इसके ५ भेद हैं—एकांत, विपरीत, संशय, विनय व अज्ञान।

एकांतमिथ्यात्व—अनंतगुणात्मक वस्तु में किसी एक ही गुण को मानना या अन्य गुणों को न मानना एकान्त मिथ्यात्व है।

विपरीतमिथ्यात्व—वस्तु से उल्टे स्वरूप की श्रद्धा करना विपरीत मिथ्यात्व है।

संशयमिथ्यात्व—वस्तु स्वरूप ऐसा है या अन्य प्रकार है आदि संशय करना संशय मिथ्यात्व है।

विनयमिथ्यात्व—स्वरूप न समझने के कारण सब देव व मतों का समान रूप से विनय करना विनय मिथ्यात्व है।

अज्ञानमिथ्यात्व—हित अहित का विवेक न होना अज्ञानमिथ्यात्व है।

अविरति १२ प्रकार की है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति व त्रस इन ६ काय के जीवों की हिंसा का त्याग नहीं करना सो ६ कायाविरति हैं।

पांच इन्द्रिय और मन के विषयों से विरक्त नहीं होना सो ६ इन्द्रियाविरति हैं।

कषाय २५ हैं (इनके नाम व स्वरूप ५ वें पाठ में लिखे गये हैं वहाँ देखना चाहिये)।

योग १५ होते हैं—१ सत्यमनोयोग, २ असत्यमनोयोग, ३ उभयमनोयोग, ४ अनुभयमनोयोग, ५ सत्यवचनयोग, ६ असत्यवचनयोग, ७ उभयवचनयोग, ८ अनुभयवचनयोग, ९ औदारिककाययोग, १० औदारिकमिश्रकाययोग, ११ वैक्रियककाययोग, १२ वैक्रियकमिश्रकाययोग, १३ आहारककाययोग, १४ आहारकमिश्रकाययोग, १५ कार्माणकाययोग।

सत्यमन के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों में जो हलन चलन होता है उसे सत्य मनोयोग कहते हैं (इसी प्रकार असत्यमनोयोग आदि १४ योगों में कहना चाहिये)।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

विशेष—जब तक औदारिकशरीर, वैक्रियकशरीर, आहारक शरीर को पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक, औदारिकमिश्रकाय, वैक्रियकमिश्रकाय, व आहारकमिश्रकाय कहलाता है।

इस प्रकार ५ मिथ्यात्व, १२ अविरति, २५ कषाय, १५ योग सब मिल कर आश्रव ५७ होते हैं। आश्रव महा दुःखदाई है अतः इनका त्याग करना जरूरी है।

द्रव्याश्रव—पुद्गल कर्मों के आने को द्रव्याश्रव कहते हैं।

बंध तत्व

बंध–जीव के प्रदेशों के साथ कर्मों के बंधने को बंध कहते हैं।

बंध के २ भेद हैं—१ भावबंध, २ द्रव्यबंध।

भावबंध—आत्मा के जिन भावों से कर्म बंधते हैं उन्हें भावबंध कहते हैं।

द्रव्यबंध–पुद्गल कर्मों के बँधने को द्रव्यबँध कहते हैं।

आश्रव और बंध यद्यपि साथ साथ होते हैं, तथापि इनमें आश्रव कारण है और बंध कार्य है।

http://www.jainkosh.org

संवर तत्व

नवीन कर्मों के आश्रव न होने को संवर कहते हैं।

संवर के २ भेद हैं—१ भावसंवर, २ द्रव्यसंवर।

भावसंवर—आत्मा के जिन भावों से नवीन कर्म आने से रुक जाते हैं उन्हें भावसंवर कहते हैं।

भावसंवर के ५७ भेद हैं—३ गुप्ति, ५ समिति, १० धर्म, १२ अनुप्रेक्षा, २२ परीषहजय, ५ चारित्र।

गुप्ति (३ मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति) मन, वचन, काय को वश करना गुप्ति है।

समिति ५, धर्म १० इन दोनों का वर्णन तीसरे पाठ में है।

अनुप्रेक्षा—बार बार विचार करने को अनुप्रेक्षा कहते हैं। अनुप्रेक्षा १२ होती हैं—

१ अनित्य, २ अशरण, ३ संसार, ४ एकत्व, ५ अन्यत्व, ६ अशुचि, ७ आश्रव, ८ संवर, ९ निर्जरा, १० लोक, ११ बोधिदुर्लभ, १२ धर्मभावना।

अनुप्रेक्षा का दूसरा नाम भावना भी है।

अनित्यभावना—"शरीर आदि समस्त पर्यायें विनाशीक हैं" आदि विचार करना अनित्यभावना है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अशरणभावना – "संसार में किसी को कोई शरण नहीं है" आदि विचार करना अशरण भावना है।

संसारभावना—यह संसार असार है इसमें जरा भी सुख नहीं है आदि विचार करना संसारभावना है।

एकत्वभावना—यह जीव अकेले ही जन्म मरण करता है सुख दुख भोगता है आदि विचार करना एकत्व भावना है।

अन्यत्वभावना—स्त्री, पुत्र, मित्र, बान्धव, मकान, वैभव, शरीर आदि सब मुझ आत्मा से जुदे हैं आदि विचार करना अन्यत्वभावना है।

अशुचिभावना—यह देह हाड़, मांस, रुधिर आदि से भरा अपवित्र और घिनावना है इससे क्या प्रीति करना आदि चिन्तवन करना अशुचिभावना है।

आश्रवभावना—योग, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि आश्रव हैं इनके करने से कर्म आते हैं, इनसे दूर रहना चाहिये आदि चिन्तवन करना आश्रवभावना है।

संवरभावना—गुप्ति समिति आदि परिणामों से कर्मों का आना बंद हो जाता है अतः संवर से आत्मा का कल्याण है इसे धारण करना चाहिये आदि विचार करना संवरभावना है।

निर्जराभावना—कर्मों के एक देश क्षय होने को निर्जरा कहते हैं, इससे आत्मा के स्वभाव का विकास होता जाता है आदि चिन्तवन करना निर्जराभावना है।

लोकभावना—३४३ राजू प्रमाण सर्वलोक में कोई प्रदेश ऐसा नहीं बचा जहाँ अनन्तबार इस जीव ने जन्म मरण न किये हों अतः सर्व से ममत्व हटाकर आत्मस्वरूप में स्थिर होने में ही भला है आदि विचार करना लोक-भावना है।

बोधिदुर्लभभावना—धन, वैभव आदि इस जीव ने अनेकों बार पाये और छोड़ना पड़े, परन्तु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र की चारित्र की प्राप्ति दुर्लभ है, रत्नत्रय ही सुखदाई है इसी का उपाय करना चाहिये आदि विचार करना बोधिदुर्लभभावना है।

धर्मभावना—धर्म से ही सत्य सुख प्राप्त होता है आदि चिन्तवन करने को धर्मभावना कहते हैं।

परीषहजय—मोक्षमार्ग में सावधान रहने के लिये व कर्मों की निर्जरा के लिये जो समता से दुःख सहन किया जाता है उसे परीषहजय कहते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

परीषहजय २२ होते हैं—क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नाग्न्य, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याञ्चा, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कारपुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान, अदर्शन परीषहजय।

१ क्षुधापरीषहजय—भूख के दुःख सहन करने को क्षुधापरीषहजय कहते हैं।

२ तृषापरीषहजय—तृषा के दुःख समता से सहने को तृषापरीषहजय कहते हैं।

३ शीतपरीषहजय—ठंड के दुःख सहन करने को कहते हैं।

४ उष्णपरीषहजय—गर्मी के दुःख सहन करने को कहते हैं।

५ दंशमशकपरीषहजय—डांस, मच्छर, जूं, बिच्छू आदि के काटने के दुःख सहन करने को कहते हैं।

६ नाग्न्यपरीषहजय—नंगे रहकर भी ग्लानि लज्जा विकार नहीं करने को कहते हैं।

७ अरतिपरीषहजय—अनिष्ट समागम होने पर भी द्वेष ग्लानि नहीं करने को अरतिपरीषहजय कहते हैं।

८ स्त्रीपरीषहजय—स्त्री के द्वारा डिगाये जाने पर भी

http://www.jainkosh.org

विकारभाव न करने को स्त्री परीषहजय कहते हैं।

९ चर्यापरीषहजय—चलते समय पैर में कांटे, कंकड़ आदि चुभने के दुःख सहन करने को चर्यापरीषहजय कहते हैं।

१० निषद्यापरीषहजय—एक ही आसन से बैठे रहने व उपसर्ग आदि आने पर भी आसन से विचलित नहीं होने को निषद्यापरीषहजय कहते हैं।

११ शय्यापरीषहजय—कंकरीली जमीन पर एक ही करवट से मुहूर्त मात्र शयन करने में जो दुःख हो उसके सहन करने को शय्यापरीषहजय कहते हैं।

१२ आक्रोशपरीषहजय—किसी दुष्ट पुरुष के द्वारा गाली, धिक्कार आदि शब्दों के कहने पर भी क्षोभ नहीं करने को आक्रोशपरीषहजय कहते हैं।

१३ वधपरीषहजय—किसी के द्वारा मारे पीटे खाये जाने पर भी क्षोभ नहीं करने को वधपरीषहजय कहते हैं।

१४ याचनापरीषहजय—कैसा भी संकट आने पर भी आहार, औषधि आदि नहीं माँगने को याचनापरीषहजय कहते हैं।

१५ अलाभपरीषहजय—भोजन आदि का लाभ न

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होने पर भी लाभ की तरह संतुष्ट रहने को अलाभपरीषहजय कहते हैं।

१६ रोगपरीषहजय—नाना रोग होने पर भी प्रतीकार न चाहने को रोगपरीषहजय कहते हैं।

१७ तृणस्पर्शपरीषहजय—तृण कांटे आदि चुभने पर भी क्षोभ न करने को तृणस्पर्शपरीषहजय कहते हैं।

१८ मलपरीषहजय—शरीर से पसीना धूल आदि मल के लगने पर भी क्षोभ न करने को मलपरीषहजय कहते हैं।

१९ सत्कारपुरस्कारपरीषहजय—प्रशंसा विनय न होने पर भी क्षोभ नहीं करना व प्रशंसा विनय का चिन्तवन ही नहीं करना सत्कारपुरस्कारपरीषहजय है।

२० प्रज्ञापरीषहजय—बहु ज्ञान होने पर भी मान न करने को प्रज्ञापरीषहजय कहते हैं।

२१ अज्ञान परीषहजय—बहुत काल तक तप आदि करने पर भी अवधिज्ञान आदि प्रकट न होने पर क्षोभ नहीं करने को अज्ञानपरीषहजय कहते हैं।

२२ अदर्शन परीषहजय—बहुत काल तप आदि करने पर भी ऋद्धि आदि प्रकट न होने पर सत्य श्रद्धा से चलित नहीं होने को अदर्शन परीषहजय कहते हैं।

चारित्र—रागद्वेषादि भावों से हट कर आत्मस्वरूप में स्थिर होना चारित्र है।

चारित्र के पांच भेद हैं–(१) सामायिक, (२) छेदोपस्थापना, (३) परिहार विशुद्धि, (४) सूक्ष्मसाम्पराय, (५) यथाख्यात चारित्र।

सामायिकचारित्र—सब में समताभाव रखना अथवा सर्वव्रतों का अभेद रूप से पालना सामायिकचारित्र है।

छेदोपस्थापना चारित्र—समता या व्रत में भंग हो जाने पर फिर से उसमें स्थिर होना अथवा व्रतों का भेद रूप से पालन करना छेदोपस्थापना चारित्र है।

परिहारविशुद्धिचारित्र—प्राणियों की हिंसा के परिहार से विशिष्ट शुद्धि जहां हो उसे परिहार विशुद्धिचारित्र कहते हैं।

सूक्ष्मसाम्परायचारित्र—कषायों का अभाव करते करते सूक्ष्मलोभ नाममात्र को बाकी रह जाय उसे सूक्ष्मसाम्पराय कहते हैं उसके नाश करने के प्रयत्न को सूक्ष्मसाम्परायचारित्र कहते हैं।

यथाख्यातचारित्र—कषायों का अभाव हो जाने पर जो आत्मस्वभाव का विकास होता है उसे यथाख्यात-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

चारित्र कहते हैं।

निर्जरा

कर्मों के एकदेश क्षय होने को निर्जरा कहते हैं।

निर्जरा के २ भेद हैं—(१) भावनिर्जरा, (२) द्रव्य-निर्जरा।

भावनिर्जरा—आत्मा के जिन भावों से कर्मों की निर्जरा हो उसे भावनिर्जरा कहते हैं।

द्रव्यनिर्जरा—पौद्गलिक कर्मों की निर्जरा को द्रव्यनिर्जरा कहते हैं।

निर्जरा के २ भेद इस प्रकार भी हैं—(१) सविपाक-निर्जरा, (२) अविपाकनिर्जरा।

सविपाकनिर्जरा—फल देकर कर्मों के झड़ने को सविपाकनिर्जरा कहते हैं।

अविपाकनिर्जरा—तप व आत्मस्थिरता आदि भावों से, बिना फल दिये हुए ही कर्मों के झड़ने को अविपाक-निर्जरा कहते हैं।

सविपाकनिर्जरा सब ही मोही जीवों के भी होती रहती है अतः सविपाकनिर्जरा मोक्ष का साधन नहीं है।

http://www.jainkosh.org

अविपाकनिर्जरा मोक्ष का साधन है।

मोक्ष

कर्मों के सर्वथा क्षय हो जाने को मोक्ष कहते हैं। मोक्ष अवस्था में परमात्मा को न तो ज्ञानावरणादि आठों कर्म हैं और न रागादि भावकर्म हैं तथा नोकर्म (शरीर) भी नहीं है। मुक्त जीव अपने अनंतचतुष्टय में अनन्तानन्त काल तक (सदैव) विराजमान रहते हैं।

मोक्ष के २ भेद हैं–(१) भावमोक्ष, (२) द्रव्यमोक्ष।

भावमोक्ष—राग, द्वेष, मोह, अज्ञान आदि सर्व विभावों से छूट जाने को भावमोक्ष कहते हैं।

द्रव्यमोक्ष—आठों कर्मों से छूट जाने को द्रव्य-मोक्ष कहते हैं।

प्रश्नावली

१—तत्व का लक्षण लिखकर तत्व कितने होते हैं? नाम लिखो।

२—आश्रव किसे कहते हैं उसके कितने भेद हैं? नाम लिखो।

३—ज्ञानावरणकर्म, असातावेदनीय, दर्शनमोहनीय, नरकायु, अशुभनामकर्म इनका आश्रव कैसे होता है।

४—निम्नलिखित कार्य से किन कर्मों का आश्रव होता है और क्या फल मिलता है? (क) दूसरों की निन्दा करना, (ख)

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ऊंचे कार्य करना, (ग) सत्पुरुषों को देखकर प्रसन्न रहना, (घ) छल कपट करना, (च) किसी के दान में विघ्न करना, (च) सब प्राणियों पर दया करना, (ज) साधुवों को देख कर ग्लानी करना।

५—विपरीत मिथ्यात्व, इन्द्रियाविरति, द्रव्याश्रव का लक्षण लिखकर योग कितने होते हैं उनके नाम लिखो।

६—मिश्रकाय से तुम क्या समझते हो।

७—कुल आश्रव कितने होते हैं ?

८—भावसंवर, संसार भावना, एकत्वभावना, लोक भावना, आक्रोशपरीषहज्य परतिपरिषजय, प्रज्ञापरीषहजय का लक्षण लिखकर यह बतावो कि परीषहजय कितने होते हैं उनके नाम लिखो ?

९—परीषहजय से क्या लाभ होता है ?

१०–चारित्र का लक्षण लिखकर वह बतावो कि चारित्र के कितने भेद हैं ? नाम लिखो।

११–परिहार विशुद्धि चारित्र यथाख्यातचारित्र सामायिकचारित्र किसे कहते हैं।

१२–निर्जरा किसे कहते हैं और निर्जरा के कितने भेद हैं ? व कौन कौन ?

१३–मोक्ष होने पर क्या हालत रहती है ?

१४–ग्रहण करने योग्य तत्त्व कौन कौन हैं ?

पाठ ९

अनेकान्त और स्याद्वाद

वस्तु में अनेक धर्म व गुण होते हैं इसलिये वस्तु अनेकान्तमय है और वस्तु का स्वरूप अनेकान्त है।

अनेकान्तमय वस्तु के उन अनेक धर्मों को अपेक्षावों से बताना स्याद्वाद है।

जैसे–एक पुरुष है वह पिता भी लगता है पुत्र भी लगता है माका भी लगता है भानजा भी लगता है आदि, इस प्रकार उस पुरुष में अनेक नाते धर्म पाये गये हैं यह अनेकान्त का दृष्टान्त है।

जैसे–वह पुरुष पुत्र की अपेक्षा पिता है, पिता की अपेक्षा पुत्र है, भानजे की अपेक्षा मामा है, मामा की अपेक्षा भानजा है आदि अपेक्षावों से उस पुरुष में अनेक नाते धर्म का वर्णन करना यह स्याद्वाद का का दृष्टान्त है।

जैसे–जीव में नित्यपना (कभी नष्ट नहीं होना) भी है, अनित्यपना (एक हालत में न रहना) भी है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अस्तित्व भी है, नास्तित्व भी है, आदि अनेक धर्म पाये जाते हैं इस प्रकार जीव का स्वरूप अनेकान्त है अर्थात् जीव अनेकान्तात्मक है।

जैसे–जीव में द्रव्य की अपेक्षा से नित्यपना, परिणमन की अपेक्षा से अनित्यपना है, अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से अस्तित्व है तो पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से नास्तित्व है आदि अपेक्षावों से जीव में अनेक धर्मों का वर्णन करना स्याद्वाद है।

लोक में जो अनेक मत प्रचलित हो गये हैं वे प्रायः वस्तु के एक एक धर्म को (अंश) को ही मानने के कारण हुए हैं, यदि सर्व सिद्धान्तों की अपेक्षायें खोजी जावें और उन अपेक्षावों से वस्तु में उन उन सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिये जावें तो कोई विसंवाद नहीं रहता।

जैसे चार अन्धे हाथी का स्वरूप जानने के लिये प्रयत्नशील हुए उन्होंने हाथी को छू कर बताया–एक ने कहा–हाथी खंभे के समान होता है, तब दूसरा बोला–नहीं हाथी सूप के समान ही होता है, तब तीसरा बोला–हाथी मूसल के समान ही होता है और चौथा बोला–हाथी बड़े ढोल के समान ही होता है। चारों

http://www.jainkosh.org

आपस में झगड़ने लगे, वहां एक चतुर पुरुष आया और उसने उनको झगड़ते हुये देख कर उनका समाचार जाना तब चतुर पुरुष ने उन चारों को समझाया कि भाई व्यर्थ क्यों झगड़ते हो, आप चारों सत्य कहते हो, केवल "ही" की जगह "भी" लगा दो। सुनो–हाथी पैर की अपेक्षा खम्भे के समान भी है, और कान की अपेक्षा सूप के समान भी है, सूंड की अपेक्षा मूसल के समान भी है, और पैर की अपेक्षा बड़े ढोल के समान भी है। जब यह बात उन चारों के समझ में आई तब विवाद समाप्त हो गया।

प्रश्नावली

१—अनेकान्त किसे कहते हैं? दृष्टान्त देकर समझावो।

२—स्याद्वाद और अनेकान्त में क्या अंतर है?

३—जीव में अनेक धर्म कैसे पाये जाते हैं स्पष्ट रूप से समझावो।

४—एकान्तवादियों को समझाने के लिये कोई अच्छा उदाहरण दो।

५—दुनियां में अनेक धर्म या मत क्यों हो गये हैं?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पाठ १०

तीर्थंकरों के पञ्चकल्याणक

जो, केवल ज्ञानी या श्रुतकेवली के समक्ष षोडश कारण भावना भाकर तीर्थंकर प्रकृति का बंध करते हैं वे तीसरे भव में तीर्थंकर होते हैं और उनके पांच कल्याणक महोत्सव होते हैं—(१) गर्भकल्याणक, (२) जन्म-कल्याणक, (३) तपकल्याणक, (४) ज्ञानकल्याणक, (५) निर्वाणकल्याणक।

गर्भकल्याणक

जब भगवान गर्भ में आते हैं उससे छह माह पहिले इन्द्र की आज्ञा से कुवेर उस नगरी की बड़ी शोभा करता है और तब से लेकर जन्मकाल तक (१५ माह) उनके माता पिता के आङ्गण में रत्नों की वर्षा करते हैं।

गर्भ की रात्रि के पिछले प्रहर में माता १६ स्वप्न देखती है, वे १६ स्वप्न एक पद्य में इस प्रकार लिखित हैं—

सुरकुञ्जरसम कुञ्जर धवल धुरंधरो।
केहरि केशरिशोभित नख शिख सुंदरो॥

कमला कलश न्हवन दुइ दाम सुहावनी।
रवि शशिमंडल मधुर मीन जुग पावनी॥
पावन कनकघट जुगमपूरण कमलकलित सरोवरो।
कल्लोलमालाकुलितसागर सिंहपीठ मनोहरो॥
रमणीक अमर विमान फणपति भवन भुवि छवि छाजिये।
रुचि रत्नराशि दिपंत दहन सु तेज पुञ्ज विराजिये॥

फिर प्रभातकाल तीर्थंकर की माता पति से स्वप्नों का फल पूछती है, उत्तर में वे कहते हैं– कि "तुम्हारे तीन लोक का नाथ पुत्र होगा"।

देवियां माता की नाना प्रकार से सेवा करती हैं।

इस सब महोत्सव को गर्भकल्याणक महोत्सव कहते हैं।

जन्मकल्याणक

जब तीर्थंकर का जन्म होता है तब चारों प्रकारों के देवों के यहां घंटा शंख आदि के महाशब्द होते हैं, इन्द्र का आसन कंपता है और अवधिज्ञान से इन्द्र जानता है कि तीर्थंकर का जन्म हुआ, इन्द्र चारों प्रकारों के देवों के साथ साजसहित नगरी में आते हैं, प्रथम इन्द्राणी तीर्थंकर की माता के समीप मायामय बालक सुलाकर तीर्थंकर को लाती है और इन्द्र को

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सौंपती है।

इन्द्र सब देवों सहित मेरु पर्वत पर जाते हैं और वहां पाण्डुकशिला पर भगवान का क्षीरसमुद्र के निर्मल जल से भरे हुये १००८ कलशों से अभिषेक करते हैं और फिर स्तुति करके उनके माता पिता को सौंप देते हैं और वहां भी स्तुति करके उनके माता पिता को सौंप देते हैं और वहां भी स्तुति नृत्य करके और तीर्थंकर का मन प्रसन्न रखने के लिये कुछ देवों को तीर्थंकर की सेवा में नियत करके चले जाते हैं।

इस महोत्सव को जन्मकल्याणक महोत्सव कहते हैं।

तपकल्याणक

जब तीर्थंकर महाराज को वैराग्य होता है तब लौकान्तिक देव भगवान के वैराग्य की प्रशंसा करके चले जाते हैं और तीर्थंकर महाराज को पालकी पर विराजमान करके पहिले भूमिगोचरी मनुष्य फिर विद्याधर मनुष्य और फिर देव उन्हें वन में ले जाते हैं, वहाँ तीर्थंकर महाराज "ॐ नमः सिद्धेभ्यः" कहकर जिन दीक्षा लेते हैं। इस महोत्सव को तपकल्याणक कहते हैं।

http://www.jainkosh.org

ज्ञानकल्याणक

जब तीर्थंकर महाराज के केवल ज्ञान का विकास होता है तब इन्द्र व कुबेर समवशरण की रचना करते हैं, जिसके मध्य में भगवान् अन्तरीक्ष विराजमान रहते हैं, इसमें १२ सभायें होती हैं; जिनमें मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका तिर्यंच देव देवी सब आकर भगवान् का उपदेश सुनते हैं।

जब भगवान का विहार होता है तब उनके चरण-कमलों के तल में स्वर्णकमलों की रचना होती जाती है, और जहां भगवान् विराजमान होते हैं वहां फिर समवशरण की रचना होती है।

इस महोत्सव को ज्ञानकल्याणक महोत्सव कहते हैं।

निर्वाणकल्याणक

जब तीर्थंकर भगवान् का निर्वाण होता है उससे कुछ ही दिन पहिले उनका विहार व उपदेश बन्द हो जाता है और अन्त में शेष बचे हुये ४ अघाति या कर्मों का भी नाश करके शरीर से अनंतानंत काल (सदैव) के लिये अलग हो जाते हैं और सिद्ध लोक में विराजमान रह कर केवल ज्ञान व अनंत सुख के स्वामी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहते हैं।

निर्वाण के समय इन्द्र, देव, मनुष्य आकर उनकी स्तुति करते हैं।

निर्वाण होने पर उनका शरीर कपूर की तरह उड़ जाता है, केवल नख और केश रह जाते हैं उन्हें इन्द्र क्षीरसमुद्र में क्षेपण करते हैं।

इस सब क्रिया को निर्वाणकल्याणक कहते हैं।

प्रश्नावली

१—जीव तीर्थंकर किस प्रकार हो जाते हैं?

२—तीर्थंकर के कल्याणक कितने होते हैं? नाम लिखो।

३—तीर्थंकर की माता को जो स्वप्न दिखते हैं उनके नाम लिखो।

४—जन्मकल्याणक में क्या क्या होता है?

५—तपकल्याणक में लौकान्तिकदेव क्या करते हैं? और तीर्थंकर महाराज को वन में कौन किस तरह ले जाते हैं?

६—भगवान् के विहार के समय क्या रचना होती है?

७—निर्वाण होने के बाद तीर्थंकर का आत्मा कहां और किस प्रकार रहता है?

८—निर्वाण होने के बाद तीर्थंकर के शरीर का क्या होता है?

—०:०—

पाठ ११

लघु अभिषेकपाठ

(स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहिन कर अग्रलिखित वस्तुयें पास रख कर अभिषेक के लिये तत्पर हों)।

(चौकी, थाली, केशर की कटोरी, अभिषेक के २ छन्ना, अन्य २ छन्ना, छोटे ४ जलपूर्णकलश, अर्घ्य, अर्घ्य चढ़ाने की रकाबी, पुष्पक्षेपने को बहुत छोटी रकाबी)।

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्य जगत्त्रयेशं।
स्याद्वादनायकमनंतचतुष्टयार्हम्॥
श्रीमूलसंघसुदृशां सुकृतैकहेतु—।
र्जैनेन्द्रयज्ञविधिरेष मयाऽभ्यधायि॥१॥

सौगन्ध्यसंगतमधुव्रतझंकृतेन।
संवर्ण्यमानमिव गंधमनिन्द्यमादौ॥
आरोपयामि विबुधेश्वरवृन्दवन्द्य—
पादारविन्दमभिवन्द्य जिनोत्तमानाम्॥२॥

(यह श्लोक पढ़कर अभिषेक करने वाले मस्तकादि अंग में चन्दन लगावें)

ये संति केचिदिह दिव्यकुल प्रसूता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

नागाः प्रभूतबलदर्पयुता विबोधाः ॥
संरक्षणार्थममृतेन शुभेन तेषाम् ।
प्रक्षालयामि पुरतः स्नपनस्य भूमिम् ॥३॥

(इसको पढ़कर अभिषेक के लिये भूमि या चौकी को पहिले सूखे छन्ने से साफ कर प्रक्षालन करे)।

क्षीरार्णवस्य पयसां शुचिभिः प्रवाहैः ।
प्रक्षालितं सुरवरैर्यदनेकवारम् ॥
अत्युद्धमुद्यतमहं जिनपादपीठम् ।
प्रक्षालयामि भवसंभवतापहारि ॥४॥

(इसको पढ़कर थाली या सिंहासन विराजमान करे)।

श्रीशारदासुमुखनिर्गतबीजवर्णं ।
श्रीमंगलीकवरसर्वजनस्य नित्यम् ॥
श्रीमत्स्वयं क्षयति तस्य विनाशविघ्नम् ।
श्रीकारवर्णलिखितं जिनभद्रपीठे ॥५॥

(इसे पढ़कर थाली या सिंहासन पर "श्री" लिखना चाहिये)

यः पाण्डुकामलशिलागतमादिदेव ।
मस्नापयन् सुखराः सुरशैलमूर्ध्नि ॥
कल्याणमीप्सुरहमक्षततोयपुष्पैः ।

http://www.jainkosh.org

संभावयामि पुर एव तदीयबिम्बम् ॥६॥

(पुष्पक्षेपण कर "श्री" लिखित पीठ पर जिनबिंब की स्थापना करें)।

सत्यल्लवार्चितमुखान् कलधौतरूप्य—।
ताम्रारकूटघटितान् पयसा सुपूर्णान् ॥
संवाह्यतामिव गतांश्चतुरः समुद्रान् ।
संस्थापयामि कलशान् जिनवेदिकान्ते ॥७॥

(इसे पढ़कर ४ कलश चौकी के चारों कोनों पर रखना चाहिये)

उदकचन्दनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घ्यकैः ।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिननाथमहं यजे ॥८
ॐ ह्रीं श्री परमदेवाय श्री अर्हत्परमेष्ठिनेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(रकाबी में अर्घ्य चढ़ावे)

दूरावनम्रसुरनाथकिरीटकोटी ।
संलग्नरत्नकिरणच्छविधूसरांघ्रिम् ॥
प्रस्वेदतापमलमुक्तमपि प्रकृष्टै—
—र्भक्त्या जलैर्जिनयतिं बहुधाभिषिञ्चे ॥९॥

(आगे मंत्र पढ़ता हुआ जिनबिम्ब पर जल धारा देवे)।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादिमहावीर पर्यन्त चतुर्विंशतितीर्थंकरपरमदेवं आद्यानामाद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे···नाम्नि नगरे मासानामुत्तमे मासे··· पक्षे······शुभदिने मुनि-आर्यिकाश्रावकश्राविकाणां सकल कर्मक्षयार्थं जलेनाभिषिञ्चे नमः।

(जितनी धारा देना हो उतनी बार मंत्र पढ़ता हुआ धारा देवे और प्रत्येक धारा के अन्त में उदकचंदन आदि श्लोक पढ़कर अर्घ्य देवे)

इष्टैर्मनोरथ शतैरिव भव्यपुंसां।
पूर्णैः सुवर्णकलशैर्निखिलैर्वसानैः॥
संसार सागरविलंघन हेतु सेतु—।
माप्लावये त्रिभुवनैकपतिं जिनेन्द्रम्॥१०॥

(बचे हुए कलशों से अभिषेक मंत्र पढ़कर अभिषेक करे)।

(पश्चात् सर्व जिनबिम्बों का अभिषेक करे अन्त में सूखे अंगोछे से अंगोछ कर यथास्थान जिनबिम्ब विराजमान करें)।

(फिर एक कटोरे में गंधोदक रखकर व एक कटोरे में जल रख देवे और वहीं पास में जिसमें पुष्प क्षेपे गये

वह कटोरी रख देवे और नीचे लिखित श्लोक पढ़कर मस्तक पर गंधोदक ले)।

निर्मलं निर्मलीकरणं पवित्रं पापनाशनम्।
जिनगंधोदकं वंदे अष्टकर्मविनाशनम्॥११॥

प्रश्नावली

१—अभिषेक के लिये किन किन वस्तुवों की आवश्यक्ता होती है

२– प्रारंभ से लेकर अंत तक अभिषेक करने की विधि अपनी भाषा में लिखो।

३—कौन सा श्लोक पढ़कर जिनबिम्ब को अभिषेक के लिये विराजमान करना चाहिये ?

४—जलधारा करने का श्लोक लिखकर अभिषेक करने के समय का मंत्र लिखो।

५—गंधोदक लेते समय कौन सा श्लोक पढ़ा जाता है ?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

पाठ १२

पूजन

(सब से पहिले पूजक ६ बार णमोकार मंत्र पढ़ता हुआ कायोत्सर्ग करे)

ॐ जय जय जय नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु ।
णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयणं।
णमो उवज्झयाणं णमो लोए सव्व साहूणं ॥

"ॐ अनादिमूलमंत्रेभ्यो नमः" (मंत्र पढ़कर थाली में पुष्प क्षेपे) ।

चत्तारि मंगलं—अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा (पुष्पाञ्जलि क्षेपे)

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत्पञ्चनमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१॥

http://www.jainkosh.org

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥२

अपराजितमन्त्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः ।
मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः ॥३॥

एसो पंच णमोयारो सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं ॥४

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः ।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥५॥

कर्माष्टकविनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम् ।
सम्यक्त्वादिगुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥६॥

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनीभूतपन्नगाः ।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥७॥

(पुष्पाञ्जलिक्षेपण करें)

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घ्यकैः ।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिननाथमहं यजे ॥८॥

ॐ ह्रीं गर्भजन्मतपोज्ञाननिर्वाणकल्याणकप्राप्तेभ्योऽपदप्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

नघ्यश्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्य जगत्त्रयेशं,
स्याद्वादनायकमनंतचतुष्टयार्हम् ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

श्रीमूलसंघसुदृशां सुकृतैकहेतुर्जैनेन्द्रयज्ञविधिरेषमयाऽभ्य-
धायि ॥९॥

स्वस्ति त्रिलोकगुरवे जिनपुङ्गवाय,
स्वस्ति स्वभावमहिमोदयसुस्थिताय।
स्वस्ति प्रकाशसहजोर्जितदृङ्मयाय,
स्वस्ति प्रसन्नललिताद्भुतवैभवाय ॥१०॥

स्वस्त्युच्छलद्विमलबोधसुधाप्लवाय,
स्वस्ति स्वभावपरभावविभासकाय।
स्वस्ति त्रिलोकविततैकचिदुद्गमाय,
स्वस्ति त्रिकालसकलायतविस्तृताय ॥११॥

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकामः।
आलंबनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्
भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि यज्ञम् ॥१२॥

अर्हन् पुराण पुरुषोत्तम पावनानि
वस्तूनि नूनमखिलान्ययमेक एव।
अस्मिन् ज्वलद्विमलकेवलबोधवह्नौ
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥१३॥

(पुष्प क्षेपे तथा आगे स्वस्तिवाचन करते हुए पुष्प-वृष्टि करता जावे)

श्री वृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अजितः।
श्री संभवः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अभिनंदनः।
श्री सुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री पद्मप्रभः।
श्री सुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्री चन्द्रप्रभः।
श्री पुष्पदन्तः स्वस्ति, स्वस्ति श्री शीतलः।
श्री श्रेयान् स्वस्ति, स्वस्ति श्री वासुपूज्यः।
श्री विमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अनन्तः।
श्री धर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्री शान्तिः।
श्री कुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अरनाथः।
श्री मल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री मुनिसुव्रतः।
श्री नमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री नेमिनाथः।
श्री पार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्री वर्द्धमानः।

(इसके बाद यदि अनुकूलता हो तो परमर्षियों का स्वस्तिवाचन करे)

(आगे देवशास्त्रगुरु की संस्कृत पूजा या भाषापूजा करे)।

अथ देव शास्त्रगुरु की भाषा पूजा

अडिल्लछन्द

प्रथम देव अरहंत सुश्रुत सिद्धान्त जू।
गुरुनिर्ग्रन्थ महंत मुकतिपुर पंथ जू॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

तीन रतन जग माँहि सो ये भवि ध्याइये।
तिनकी भक्ति प्रसाद परमपद पाइये ॥
पूजों पद अरहंत के पूजों गुरुपद सार।
पूजों देवी सरस्वती नित प्रति अष्ट प्रकार ॥१॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरवः अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् ।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरवः अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरवः अत्र मम सन्निहिता भवत भवत ॥

❀ गीता छन्द ❀

सुरपति उरग नरनाथ तिन कर वंदनीक सुपद प्रभा।
अति शोभनीक सुवर्ण उज्ज्वल देख छवि मोहत सभा ॥
वर नीर क्षीर समुद्र घट भरि अग्र तसु बहुविध नचूं।
अरहंत श्रुत सिद्धान्त गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥१॥

❀ दोहा ❀

मलिनवस्तु हर लेत सब जल स्वभाव मलछीन।
जासौं पूजों परमपद देवशास्त्रगुरु तीन ॥१॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

❀ गीता ❀

जे त्रिजग उदर मँझार प्राणी तपत अति दुर्द्धर खरे।
तिन अहित हरण सुवचन जिनके परमशीतलता भरे ॥

http://www.jainkosh.org

तसु भ्रमरलोभित घ्राण पावन सरस चंदन घसि सचूँ।
अरहंत श्रुत सिद्धान्त गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ ॥२॥

❀ दोहा ❀

चंदन शीतलता करे तपत वस्तु परवीन।
जासौं पूजों परमपद देवशास्त्र गुरु तीन ॥२॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

❀ गीता ❀

यह भवसमुद्र अपार तारण के निमित्त सुविधि ठई।
अति दृढ़ परमपावन जथारथ भक्ति वर नौका सही ॥
उज्ज्वल अखण्डित सालि तंदुल पुञ्ज धरि त्रय गुण जचूं।
अरहंत श्रुत सिद्धान्त गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ ॥३

❀ दोहा ❀

तंदुल सालि सुगंध अति परम अखण्डित बीन।
जासों पूजों परमपद देवशास्त्रगुरु तीन ॥३॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तयेऽक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ॥३॥

❀ गीता ❀

जे विनयवंत सुभव्य उर अंबुज प्रकाशन भान है।
जे एक मुख चारित्र भाषत त्रिजगमाँहि प्रधान है ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लहि कुंदकमलादिक पहुप भव भव कुवेदन सों बचूँ।
अरहंत श्रुत सिद्धान्त गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ ॥४

❀ दोहा ❀

विविध भांति परिमल सुमन भ्रमर जास आधीन।
जासों पूजों परमपद देवशास्त्रगुरु तीन ॥४॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं
निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

❀ गीता ❀

अति सबल मद कंदर्प जाको क्षुधा उरग अमान है।
दुःसह भयानक तासु नाशन को सुगरुड समान है॥
उत्तम छहों रस युक्त नित नैवेद्य कर घृत में पचूँ।
अरहंत श्रुत सिद्धान्त गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ ॥५

❀ दोहा ❀

नानाविध संयुक्त रस व्यञ्जन सरस नवीन।
जासों पूजों परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥५॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं
निर्वपामीति स्वाहा ॥५॥

❀ गीता ❀

जे त्रिजग उद्यम नाश कीने मोहतिमिर महाबली।
तिहिं कर्मघाती ज्ञान दीप प्रकाश ज्योति प्रभावली॥

इह भांति दीप प्रजाल कंचन के सुभाजन में खचूं।
अरहंत श्रुतसिद्धान्त गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥६॥

❀ दोहा ❀

स्वपरप्रकाशक ज्योति अति दीपक तम कर हीन।
जासों पूजों परमपद देवशास्त्रगुरु तीन ॥ ६ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्र गुरुभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय
दीपं निर्वपामिती स्वाहा ॥६॥

❀ गीता ❀

जो कर्म ईंधन दहन अग्निसमूहसम उद्धत लसै।
वर धूप तासु सुगंधता करि सकल परिमलता हँसै॥
इहभांति धूप चढाय नित भवज्वलन माँहि नहीं पचूँ।
अरहंत श्रुत सिद्धान्त गुरुनिर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ ॥७॥

❀ दोहा ❀

अग्निमांहि परिमल दहन चंदनादि गुण लीन।
जासों पूजों परमपद देवशास्त्र गुरु तीन ॥७॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्र गुरुभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपा-
मीति स्वाहा ॥ ७ ॥

❀ गीता ❀

लोचन सुरसना घ्राण उर उत्साह के करतार हैं।
मोपै न उपमा जाय वरणी सरस फल गुणसार हैं॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सो फल चढ़ावत अर्थ पूरन परम अमृत रस सचूँ।
अरहंत श्रुत सिद्धान्त गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ ॥८॥

❀ दोहा ❀

जे प्रधान फल फल विषैं पंच करण रस लीन।
जासों पूजों परमपद देवशास्त्र गुरु तीन ॥८॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

❀ गीता ❀

जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत पुष्प चरु दीपक धरूँ।
वर धूप निर्मल फल विविध बहु जन्म के पातक हरूँ॥
इह भांति अर्थ चढ़ाय नित भव करत शिव पंकति मचूँ।
अरहंत श्रुतसिद्धान्त गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ ।९॥

❀ दोहा ❀

वसुविध अर्घ संजोय के अति उछाह मन कीन।
जासों पूजों परमपद देवशास्त्र गुरु तीन ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्र गुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

अथ जयमाला

❀ दोहा ❀

देवशास्त्र गुरु रतन शुभ तीन रतन करतार।

http://www.jainkosh.org

भिन्न भिन्न कहुं आरती अल्प सुगुणविस्तार ॥१॥

❀ पद्धरि छन्द ❀

कर्मन की त्रेसठ प्रकृति नाशी।
जीते अष्टादशदोषराशि ॥
जे परम सुगुण हैं अनंत धीर।
कहवत के छयालिस गुण गंभीर ॥२॥
शुभ समवशरण शोभा अपार।
शत इन्द्र नमत कर शीश धार ॥
देवाधिदेव अरहंत देव।
बंदौं मनवच तन कर सुसेव ॥ ३ ॥
जिनकी ध्वनि ह्वै ॐकार रूप।
निरअक्षरमय महिमा अनूप ॥
दश अष्ट महाभाषा समेत।
लघु भाषा सात शतक सुचेत ॥ ४ ॥
सो स्याद्वादमय सप्त भंग।
गणधर गूँथै बारह सु अंग॥
रवि शशि न हरै सो तम हराय।
सो शास्त्र नमौं बहु प्रीति ल्याय ॥५॥
गुरु आचारज उवझाय साध।
तन नगन रत्नत्रय निधि अगाध॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

संसार देह वैराग्य धार ।
निरवांछि तपै शिवपद निहार ॥६॥
गुण छत्तिस पच्चिस आठ बीस।
भव तारण तरण जहाज ईश ॥
गुरु की महिमा वरणी न जाय।
गुरु नाम जपौं मनवचन काय ॥७॥

❀ सोरठा ❀

कीजै शक्ति प्रमाण शक्ति बिना सरधा धरै ।
द्यानत सरधा वान अजर पद भोगवै ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसके बाद बीसतीर्थंकर पूजा, चैत्यालयों के अर्घ्य, सिद्धपूजा आदि अनेक पूजा व अर्घ समयानुसार करें) ।

(अन्त में शान्तिपाठ व क्षमायणपाठ पढ़ें)

अथ शान्तिपाठ

❀ चौपाई १६ मात्रा ❀

शान्ति नाथ मुख शशि उनहारी ।
शील गुणव्रत संयम धारी ॥
लखन एक सौ आठ विराजैं ।
निरखत नयन कमल दल लाजैं ॥१॥

पंचम चक्रवर्तिपद धारी ।
सोलम तीर्थंकर सुखकारी ॥
इन्द्र नरेन्द्र पूज्य जिन नायक ।
नमों शान्तिहित शान्ति विधायक ॥२॥
दिव्य विटप पहुपन की वर्षा ।
दुंदुभि आसन वाणी सरसा ॥
छत्र चमर भामंडल भारी ।
ये तुव प्रातिहार्य मनहारी ॥ ३ ॥
शान्ति जनेश शान्ति सुखदाई ।
जगत पूज्य पूजों शिर नाई ॥
परम शान्ति दीजै हम सबको ।
पढ़ै तिन्हें पुनि चार संघ को ॥४॥

❀ बसंत तिलका ❀

पूजैं जिन्हें मुकुट हार किरीट लाके ।
इन्द्रादि देव अरु पूज्य पदाब्ज जाके ॥
सो शान्तिनाथ वरवंश जगत्प्रदीप ।
मेरे लिये करहिं शान्ति सदा अनूप ।५॥

❀ इन्द्रवज्रा ❀

संपूजकों को प्रतिपालकों को ।
यतीन को औ यतिनायकों को ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

राजा प्रजा राष्ट्र सुदेश को ले।
कीजे सुखी हे जिन शान्ति को दे॥६॥

❀ स्रग्धरा ❀

होवे सारी प्रजा को सुख बलयुत हो धर्मधारी नरेशा।
होवे वर्षा समै पै तिलभर न रहै व्याधियों का अँदेशा॥
होवे चोरी न जारी सुसमय बरतै हो न दुष्काल भारी।
सारे ही देश धारैं जिनवरवृष को जो सदा सौख्यकारी॥७॥

❀ दोहा ❀

घाति कर्म जिन नाश कर पायो केवल राज।
शान्ति करो सब जगत में वृषभादिक जिनराज॥८॥

❀ मंदाक्रान्ता ❀

शास्त्रों का हो पठन सुखदा लाभ सत्संगती का।
सद्‌वृत्तों का सुजस कहके दोष ढाकूं सभी का॥
बोलूं प्यारे वचन हित के आपको रूप ध्याऊँ।
तौलौं सेऊँ चरन जिनके मोक्ष जौलों न पाऊं॥९॥

❀ आर्या ❀

तव पद मेरे हिये में मम
हिये तेरे पुनीत चरणों में।
तबलों लीन रहे प्रभु जबलों
प्राप्ती न मुक्तिपद की हो॥१०॥

http://www.jainkosh.org

अक्षरपदमात्रा से दूषित जो
कुछ कहा गया मुझ से।
क्षमा करो प्रभु सो सब करुणा कर
पुनि छुड़ाहु भव दुख से॥ ११॥
हे जगबन्धु जिनेश्वर पाऊं
तव चरण शरण बलिहारी।
मरणसमाधि सुदुर्लभ कर्मों का
क्षय सुबोध सुखकारी॥ १२॥
(पुष्पाञ्जलि क्षेपे)

अथ क्षमापण व विसर्जन पाठ

❀ दोहा ❀

बिन जाने व जान के रही टूट जो कोय।
तव प्रसाद ते परमगुरु सो सब पूरण होय॥१॥
पूजनविधि जानूं नाहीं नहिं जानूं आह्वान।
और विसर्जन हूं नहीं क्षमा करहु भगवान॥ २॥
मंत्र हीन धन हीन हूं क्रिया हीन जिन देव।
क्षमा करहु राखहु मुझे देहु चरण की सेव॥ ३॥
(यह पढ़कर जिस ठौने में स्थापना की उस ठौने में पुष्प क्षेपे)
(अन्त में ९ बार णमोकार मंत्र पढ़ते हुए कायोत्सर्ग करे)
॥ इति पूजन॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रश्नावली

१—चत्तारि दंडक को शुद्ध लिखो ।

२—स वाह्यभ्यन्तरे शुचिः, पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि, इन पदों की पूर्ति करो।

३—स्वस्ति त्रिलोकगुरवे यहां से लेकर त्रिकालसकलायत विस्तृताय यहां तक लिखो।

४—९ वें तीर्थंकर से लेकर १६ वें तीर्थंकर तक का स्वस्ति-वाचन लिखो।

५—देवशास्त्र गुरुपूजा के दीप और फल के छंद मंत्र लिखो।

६—गुरु की जयमाला लिखो।

७—शान्तिपाठ की पहिली व अन्तिम चौपाई लिखकर स्रग्धरा व इन्द्रवज्रा छंद लिखो ।

८—क्षमापणा पाठ लिखकर आर्याछँद में से अंतिम छंद लिखो।

९—भाषा की देवशास्त्रगुरुपूजा के रचयिता कौन हैं ?

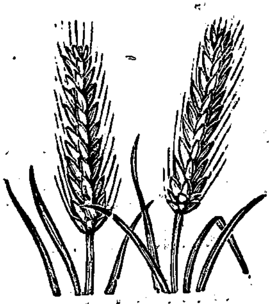

जे० पी० रस्तौगी के प्रबन्ध से विजय प्रेस मेरठ में मुद्रित ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com